विद्या भवन सोसायटी

Azim Premji University

खोजें और जानें

हिंदी त्रैमासिक | वर्ष : 2 | अंक : 6 | 20 जुलाई, 2013 | उदयपुर | ₹200 वार्षिक
RNI No. : RAJHIN/2012/51397 | ISSN : 2278 - 6406

अभिव्यक्ति

विद्या भवन सोसायटी

Azim Premji University

खोजें और जानें

हिंदी त्रैमासिक | वर्ष : 2 | अंक : 6 | 20 जुलाई, 2013

परामर्श एवं प्रबंध
हृदय कांत दीवान
एस. गिरिधर
रामगोपाल वल्लभ

समन्वयक
भाग चंद कुमावत

संपादन
विश्व विजया सिंह
वीरेंद्र शर्मा
लक्ष्मी लाल वैरागी
पुष्पराज सिंह राणावत
राजेश उत्साही
कुमार अनुपम
जया राठौड़

ले-आउट
इसरार अहमद
मो. इकराम

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

टाइपिंग सहयोग
भवानी शंकर

वितरण
निशांत कुमावत
✆ 09950012525

जिन 'खोजा' तिन पाइया...

1	हमें कहना है...	संपादकों की बात
2	कविता	पाठशाला ☆ वंशी माहेश्वरी
3	विमर्श–1	आरंभ अभिव्यक्ति का ☆ विश्व विजया सिंह
6	विमर्श–2	संगीत अभिव्यक्ति का ☆ वरदा विजयश्री
12	विमर्श–3	अभिव्यक्ति का रंगमंच ☆ विलास जानवे
20	विमर्श–4	स्कूल, स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति ☆ वृजेश सिंह
23	विमर्श–5	अभिव्यक्ति की शक्ति ☆ शैलेन्द्र दशोरा
28	विमर्श–6	बच्चे का परिवेश ☆ शकुन्तला अंजुम
36	विमर्श–7	शिक्षण की बुनियाद ☆ लावण्य शर्मा
37	विमर्श–8	अध्यापक की अभिव्यक्ति ☆ जया राठौड़
40	विमर्श–9	संकोच, झिझक और भय ☆ उषा वैष्णव
41	विमर्श–10	व्यक्ति निर्माता गुरु ☆ रामवचन राठौड़
8	अनुभव	सीखने का संघर्ष ☆ गिरिश खंडेलवाल
14	सामयिक	भाषा का खेल ☆ मनोज कुमार
16	कहानी	उसका स्कूल ☆ आलोक पांडेय
24	गवाक्ष–1	प्रशिक्षक हैं तो... ☆ मोहम्मद उमर
31	गवाक्ष–2	भाषा शिक्षण और पुस्तकालय ☆ रेखा चमोली
29	आपने कहा है	पाठकों के पत्र
30	कविता	दिशा ☆ केदार नाथ सिंह
43	संवाद	भाषा की कक्षा में कविता ☆ मनोहर चमोली
47	रपट	• पढ़ने–लिखने के नए आयाम ☆ लक्ष्मी लाल वैरागी
		• अनूठा बाल मेला ☆ मोहन लाल जाट
	पिछला आवरण	कविता ☆ चुप्पी ☆ राजेश उत्साही
	आवरण परिचय	अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन स्कूल, टोंक के उद्घाटन पर आयोजित कार्यक्रम में समुदाय की अभिव्यक्ति।

आवरण तथा पिछले आवरण पर छाया चित्र : राजेश उत्साही

यह अंक : ₹50.00
वार्षिक (व्यक्तिगत) : ₹200.00 (चार अंकों के लिए)
वार्षिक (संस्थागत) : ₹400.00 (चार अंकों के लिए)
डाक या कुरियर व्यय हम वहन करेंगे।
(कृपया चेक, बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर
विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के नाम से भेजें।)

पत्र–व्यवहार के लिए पता
खोजें और जानें
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र,
वि. भ. सोसायटी परिसर, मोहन सिंह मेहता मार्ग
फतहपुरा, उदयपुर (राज.) – 313001
फोन : 0294–2451487
email : vbsalr@yahoo.com.

हमें कहना है...

अंततः खोजा के इस अंक का केंद्रीय विषय 'अभिव्यक्ति' बन पड़ा है। अंक की कल्पना करते समय दिमाग में यह बात थी कि विभिन्न पाठ्येतर गतिविधियों से विकसित होने वाली कुशलताओं का उपयोग कक्षा में शिक्षण के दौरान कैसे किया जा सकता है, इस पर कुछ व्यावहारिक अनुभव तथा सामग्री जुटाई जाए। हमने अपनी तरफ से इसकी भरसक कोशिश की पर फिर भी जो मन में था, वह पूरा नहीं हुआ। बावजूद इसके यह अंक हमें महत्त्वपूर्ण बनता नजर आ रहा है। जो सामग्री मिली, उसे हम अपनी तरफ से सजा–संवारकर यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

हम सब अपने को अभिव्यक्त करने के लिए अलग–अलग समय पर अलग–अलग माध्यम या तरीका अपनाते हैं। इन माध्यमों में कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनमें महारत हासिल करने के लिए खासी मेहनत भी करनी होती है। बच्चों में इन माध्यमों से यह कुशलता कैसे विकसित की जा सकती है और उससे उनके व्यक्तित्व विकास में क्या निखार आता है, यह हम आपके सामने 'विमर्श' के लिए रख रहे हैं।

शिक्षकों के प्रशिक्षण निरंतर ही होते रहते हैं। प्रशिक्षण में लगे व्यक्ति यह भी व्यक्त करते रहते हैं कि इतने प्रशिक्षणों के बावजूद शिक्षक की गुणवत्ता में कोई उल्लेखनीय बात नजर नहीं आती है। हमारा मानना है कि दो क्षण रुककर हमें यह भी सोचना चाहिए कि इसमें कहां गड़बड़ है? मोहम्मद उमर का लेख इसी मुद्दे को एक अलग ढंग से हमारे सामने रखता है।

दूसरी तरफ अगर शिक्षक के मन में नवाचार की इच्छा हो तो वह अपने लिए गुजांइश ढूंढ ही लेता है। रेखा चमोली और मनोहर चमोली के लेख इस तथ्य के प्रमाण हैं। 'पाठशाला' के परिदृश्य पर लगभग तीस साल पहले लिखी गईं वंशी माहेश्वरी की कविताएं आज भी उतनी ही मौजूं लगती हैं। तो सवाल यह भी है कि हम कर क्या रहे हैं? इसी बात को थोड़े तल्ख अंदाज में गिजुभाई ने लगभग अस्सी साल पहले कहा था। आप भी पढ़ें और आकलन करें कि आखिर हम कहां पहुंचे हैं। गिजुभाई ने अपनी पुस्तक 'चलते–फिरते' में कुछ इस तरह कहा था–

अच्छे *अध्यापक को बच्चे चाहते हैं और बुरे से बहुत चिढ़ते हैं। मैंने एक बार एक बच्चे से कहा, 'अगर तुमको गुरुजी पीटते हैं तो बड़े होकर तुम उन्हें मत पीटना! ऐसा काम हमें नहीं करना चाहिए।' बच्चा जोर से बोला, 'मारूंगा, मारूंगा सौ डंडे मारूंगा!'*

जिस अध्यापक के लिए बच्चा सौ डंडों की तजवीज सुनाता है उस अध्यापक को तो जिंदा ही नहीं रहना चाहिए। बच्चे अब लंबे समय तक अध्यापकों के साम्राज्य को टिकने नहीं देंगे। या तो वे शिक्षक को संपूर्ण प्रेमभाव से स्वीकार करेंगे या फिर पद–भ्रष्ट कर देंगे। उनको शिक्षक तो चाहिए, पर खराब शिक्षक नहीं। पुराने जमाने से ऐसा ही कुछ चला आ रहा है। उस जमाने के बच्चे गुरुजी को पसंद नहीं करते, तो स्लेट का जोर से वार करके भाग जाते थे। उनके बाद की पीढ़ी के बच्चों ने भाग जाना पसंद नहीं किया क्योंकि उनको लगा कि शाला उनकी भी है। इसलिए वे शिक्षकों को शाला में ही सताने लगे। उनकी कुर्सियों में आलपिनें चुभो देते।

अब लगता है कि ऐसी पीढ़ी आ गई है कि सारे बच्चे मिलकर कहीं अध्यापक को कमरे में बंद न कर दें, उनका अन्न–जल न बंद कर दें। अगर बच्चे यह मान लें कि शाला हमारी है, हमारे विद्यालय में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है तो निश्चय ही वे शिक्षक के लिए बहुत कुछ करने को तैयार रहेंगे। अध्यापकों को अब दुनिया के भावी निर्माताओं के सामने अपना ताज उतार देना चाहिए और बच्चों की स्वतंत्र सभा का एक सभासद होकर पेश आना चाहिए।

तो हमेशा की तरह हमें आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा।

✍ संपादन साथी

पाठशाला

✍ वंशी माहेश्वरी

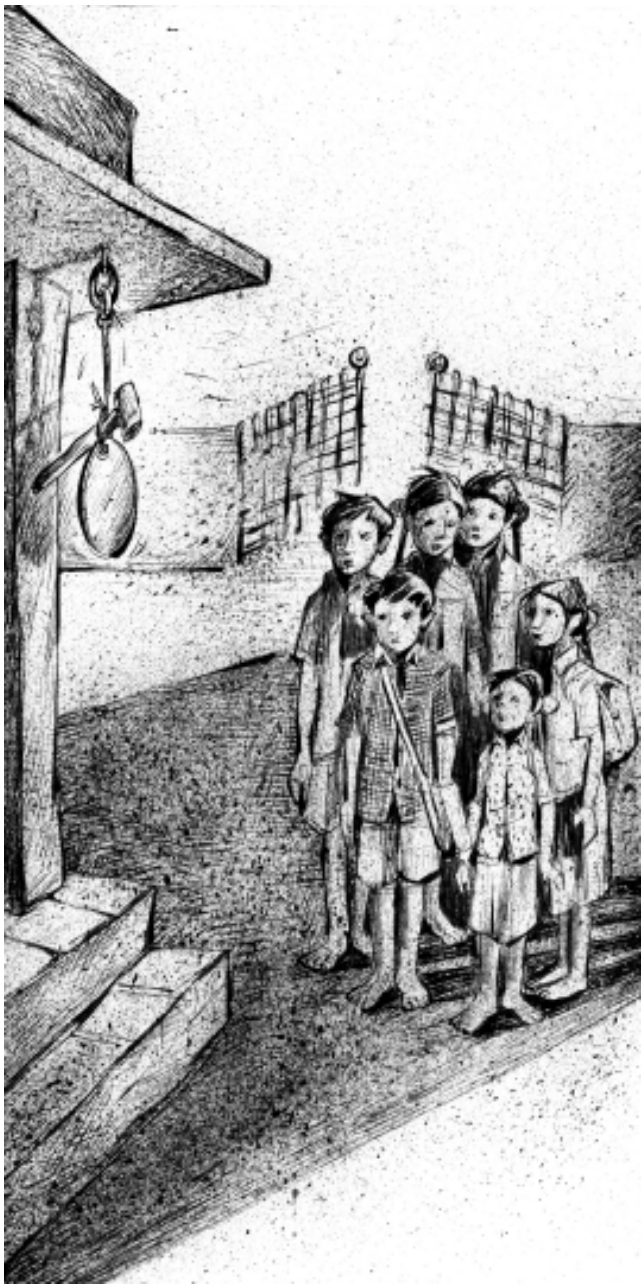

।। एक ।।
पाठशाला आते ही
बच्चे,
छुट्टी की राह देखते हैं,
पिछली बार का
अधूरा खेल
पूरा करते हैं
''बैठ घोड़ा पानी पी।''

।। दो ।।
छुट्टी होने की खुशी
पाठशाला का फाटक
तोड़ती है
बच्चे, आकाश को
गेंद जैसा उछालते हैं
बस्ता पीटते हैं
उन्हें, इससे मतलब नहीं
तिरंगा आधा क्यों झुका है?

।। तीन ।।
माल गुजार की
दलान
गांव की पाठशाला है
चूरिया में लटकी घंटी
बच्चों को
बुलाने और भगाने में
एक बार
बजती है।

(लेखक के कविता संग्रह ''पाठशाला'' से साभार)

आरंभ अभिव्यक्ति का

✍ विश्व विजया सिंह

"यह एक मानी हुई बात है कि बच्चों में सीखने और अपने आसपास की दुनिया को समझने की स्वाभाविक इच्छा होती है। इसलिए शुरुआती वर्षों में अधिगम बच्चों की अभिरुचियों और प्राथमिकताओं के मुताबिक होना चाहिए और बच्चों के अनुभवों में संदर्भित होना चाहिए, न कि औपचारिक रूप से बनाया हुआ। बच्चों को समर्थ बनाने वाला माहौल वह होता है, जो बच्चों को विविध प्रकार के अनुभवों की दिशा में प्रेरित कर सके, जो बच्चों को कुछ करने, खुलकर अपने–आपको अभिव्यक्त करने के अवसर प्रदान करे। साथ ही वह सामाजिक संबंधों में रचा बसा हो, जिससे उन्हें स्नेह, संरक्षण और विश्वास की अनुभूति हो। खेलकूद, संगीत, गीत, कलाएं तथा अन्य गतिविधियां, जो स्थानीय सामग्री, कला और ज्ञान पर आधारित हों, साथ ही, बोलने, स्वयं को अभिव्यक्त करने, अनौपचारिक संपर्क–संवाद के अवसर आदि इस चरण (प्रांरभिक बाल्यावस्था शिक्षा) में ज्ञान के आवश्यक अंग हैं।"

–राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005
अध्याय 3 : पाठ्यचर्या के क्षेत्र, स्कूल की अवस्थाएं और आकलन

प्रश्न यह उठता है कि यह सब कैसे संभव हो अथवा इन बातों को व्यावहारिक कैसे बनाया जाए? बहुधा देखने में यह आता है कि पूर्व प्राथमिक स्तर पर भी बच्चों पर एक नीरस दिनचर्या और औपचारिक एवं व्यवस्थित शिक्षा थोप दी जाती है। कॉपी–पेंसिल पकड़ाकर लिखवाना शुरू हो जाता है। हिंदी अथवा अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों को जमा–जमाकर, लिख–लिखकर बच्चा पृष्ठ दर पृष्ठ भरता है या अंक लिखना सीखता है। बच्चा नाजुक उंगलियों में कठोर पेंसिल पकड़े, सिर झुकाए लिखता रहता है और कुछ इसी तरह का गृहकार्य भी उसे मिलने लगता है। यहां तक कि परीक्षाएं भी ली जाती हैं। किंतु यह सब बच्चों के विकास की दृष्टि से अत्यंत हानिकर है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में यह भी कहा गया है, "इस संबंध में सचेत रहने की आवश्यकता है कि इस स्तर पर बच्चों पर जबर्दस्ती लिखने, पढ़ने और अंक गणित सीखने का दबाव नहीं बनाया जाए, न ही औपचारिक शिक्षा जल्द शुरू की जाए।"

पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए यह जरूरी है कि उन्हें अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर और अनुभव दिए जाएं। आइए देखते हैं कि उक्त सब बातों से परिचित एक सचेत शिक्षिका अपने विद्यालय में किस तरह के प्रयास करती है।

बच्चों के साथ एक रिश्ता

तीन–साढ़े तीन वर्ष के बच्चे जब विद्यालय में प्रवेश लेते हैं तो सर्वप्रथम शिक्षिका उनसे बातचीत करके तादात्म्य स्थापित करती है। आरंभ में वे कुछ डरे–डरे या संकोच में दिखते हैं पर शिक्षिका द्वारा पूछे गए छोटे–छोटे प्रश्नों के उत्तर वे देने लगते हैं। शिक्षिका जानती है कि उनमें कुछ प्रथम पीढ़ी के

शिक्षार्थी हैं। कइयों के अभिभावक साक्षर नहीं हैं। वे स्थानीय बोलियों का उपयोग करते हैं। शिक्षिका उन्हें उनकी मातृभाषा में ही बोलने देती है। बच्चे धीरे–धीरे सहज होने लगते हैं। फिर शुरू होते हैं, छोटे–छोटे अभिनय गीत। शिक्षिका द्वारा किए गए हावभाव व अंग संचालन का धीरे–धीरे बच्चे भी अनुकरण करने लगते हैं। गीत/कविता के बोल भी दोहराने लगते हैं। कोई जोर–जबर्दस्ती नहीं की जाती, कि हर बच्चे को बोलना ही है, पर सुन–सुनकर स्वतः ही बच्चों के होंठ हिलने लगते हैं और वे आनंदित होकर बोलने लगते हैं। शिक्षिका छोटी–छोटी कहानियां सुनाती है। आवश्यकतानुसार अलग–अलग हावभाव, आवाजें निकालती है या चित्रमय चार्ट्स दिखाती है। बच्चे तन्मय होकर सुनते हैं और बाद में मौका मिलने पर वे उन कहानियों को वापस सुना भी देते हैं। इस प्रकार बच्चे धीरे–धीरे विद्यालय के माहौल में रम जाते हैं।

कक्षा के बाहर कक्षा

शिक्षिका बच्चों को कक्षा से बाहर ले जाती है। बच्चे पौधों, फूलों, पत्तियों को देखते हैं। बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता होती है। वे जो चाहे बनाएं, खेलें। शिक्षिका केवल अवलोकन करती है। बच्चे विभिन्न रूपों में अपनी कल्पनाओं को मूर्त रूप देते हैं। कोई पैर के ऊपर बालू से घर बनाता है, तो कोई सड़क बनाकर उस पर अपनी कल्पना से पत्थर या ईंट की गाड़ी चलाता है। कोई गड्ढा बनाकर उसमें पानी भरकर तालाब या झील बना देता है।

शिक्षिका जानती है कि किसी सुंदर दृश्य, चित्र या कलाकृति को देखकर प्रशंसा में निकले शब्दों का बहुत दूर तक असर होता है। प्रकृति से बच्चों का सामंजस्य स्थापित हो, वे उगते–डूबते हुए सूरज, टिमटिमाते हुए तारों, घटते–बढ़ते चांद, खिलते हुए फूलों, बरसती हुई बूंदों या बादलों, तितलियों या चिड़ियों को देखकर, सौंधी मिट्टी की खुशबू, पक्षियों के कलरव, बहते पानी की कल–कल से आनंद प्राप्त कर सकें– इस हेतु प्रकृति का सामीप्य व चर्चा अपेक्षित है। इसलिए वह सुंदर चीजों को देखकर सौंदर्यानुभूति के लिए उन्हें प्रोत्साहित करती है। इससे उनमें सौंदर्यबोध का विकास भी होगा।

चित्रकला के रंग

पूर्व प्राथमिक स्तर पर जब औपचारिक लेखन शुरू नहीं किया जाता, शिक्षिका उन्हें कला के माध्यम से अभिव्यक्ति के भरपूर अवसर देती है। बच्चों की कोई ड्राइंग फाइल या कॉपी नहीं

होती। शिक्षिका सफेद ड्राइंग शीट को कॉपी के पृष्ठ के आकार में काटकर बच्चों को दे देती है। कक्षा में क्रेयान या वैक्स कलर्स भी रखे होते हैं। वह बच्चों से कहती है कि वे जो चाहें चित्र बनाएं। आमतौर पर स्कूलों में शिक्षक द्वारा सेब या ऐसा ही कोई चित्र ब्लैक बोर्ड पर बनाकर बच्चों को वैसा ही बनाने के निर्देश दिए जाते हैं। अथवा ड्राइंग बुक्स में कुछ रंगीन चित्र बने होते हैं और दूसरी ओर उन्हीं चित्रों की आउट लाइन बनी होती है, बच्चे उसी में रंग भरते हैं। सचेत शिक्षिका बच्चों को इस तरह नहीं बांधती। वे स्वतंत्र हैं अपनी कल्पना के पंख पसारने के लिए, कल्पना के आधार पर कुछ भी बनाने के लिए। शिक्षिका का अनुभव यह कहता है कि बच्चे बड़े प्यारे चित्र बनाते हैं। उनका रंग संयोजन आकर्षक होता है और फिर जब वे बताते हैं कि उन्होंने क्या बनाया है, सुनना बड़ा अच्छा लगता है। छोटे बच्चों के लिए फिंगर पेंटिंग और स्प्रे पेंटिंग भी बहुत कारगर हैं।

कागज, कोलाज और क्राफ्ट

शिक्षिका कुछ अन्य गतिविधियां भी करती है। रंगीन कागजों को मनचाही आकृतियों में काटना, चिपकाना या उन्हें मोड़कर अलग–अलग चीजें यथा नाव, हवाई जहाज, बास्केट, बंदूक,

सृजनात्मक अभिव्यक्ति तथा सौंदर्य बोध के विकास के बारे में

डॉ. विनीता कौल कहती हैं कि –

- सभी बच्चों में सृजनात्मक क्षमता होती है यद्यपि उसकी श्रेणी में अंतर हो सकता है।
- सृजनात्मकता और बुद्धिमत्ता एक नहीं है। हो सकता है कि एक कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्ति में उतनी सृजनात्मक क्षमता न हो।
- सृजनात्मकता शून्य में नहीं पनपती। बच्चों को जितना ज्ञान और अनुभव दिया जाएगा अपने सृजनात्मक प्रयासों के लिए उन्हें उतनी ही सुदृढ़ नींव मिलेगी।
- एक प्रेरक वातावरण बच्चे की सृजनात्मकता को बढ़ावा देता है।
- स्वतंत्र खेलों, विशेष रूप से नाटकीय और रचनात्मक खेलों के अवसर बच्चों की सृजनात्मकता का पोषण करते हैं।
- घर या शाला का कठोर अनुशासनपूर्ण वातावरण, जो एकरूपता पर विशेष बल देता है, बच्चों की सृजनात्मकता को बाधा पहुंचा सकता है।

(एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित लेखिका की पुस्तक 'प्रारंभिक बाल शिक्षा कार्यक्रम' से।)

गेंद आदि बनाना अपने आप में सुखद है। बच्चे इन गतिविधियों के माध्यम से रचनात्मकता से जुड़ते हैं और स्वयं कुछ कर पाने का अहसास पाते हैं।

कोलाज में अलग–अलग तरह की चीजों को चिपकाकर कोई कलाकृति का रूप दिया जाता है। बच्चों के लिए यह भी बड़ा रोचक होता है। तरह–तरह के बीज, सूखे हुए फूल, पत्ते या अन्य निरर्थक या अनुपयोगी वस्तुओं का संकलन बच्चे स्वयं करते हैं। एकत्रित सामग्री को विभिन्न आकृतियों में चिपकाकर कोई कलाकृति का रूप देते हैं। इसमें बच्चों की मौलिकता एवं कल्पनाशीलता साफ नजर आती है।

क्राफ्ट के माध्यम से बच्चों की सृजनात्मकता उभरती है। अवसर मिलने और साधन उपलब्ध होने पर वे बड़ी अच्छी–अच्छी चीजें बनाते हैं। गत्ते, ड्राइंगशीट, ग्लेज पेपर, यहां तक कि घर से लाए हुए खाली डिब्बों आदि से वे कितनी तरह की चीजें तैयार कर लेते हैं, जो उनकी रचनात्मकता का परिचायक है। मिट्टी से भी बच्चे अपने नन्हें हाथों से विभिन्न आकृतियां बनाते हैं। साधारण काली मिट्टी को भी गीला करके बच्चे मनचाही आकृतियां बना लेते हैं।

एक क्षण रुककर सोचें, तो ये सब गतिविधियां अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों में अभिव्यक्ति के कौशल को विकसित करने में सहायक हैं।

साधन और भी हैं

शिक्षिका जानती है कि संगीत व नृत्य अभिव्यक्ति के लोकप्रिय माध्यम हैं। अभिनय के अंतर्गत नाटक या एकांकी में अलग–अलग पात्रों की भूमिका बच्चे बड़ी खूबी से अदा कर लेते हैं। मूकाभिनय व एकाभिनय में भी उन्हें बड़ा आनंद आता है। कठपुतली भी अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। कठपुतली का धागे से संचालन बच्चों के लिए कुछ कठिन होता है। समय आने पर वह इन माध्यमों का उपयोग करेगी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विद्यालयों में बच्चों को अभिव्यक्ति के अधिकाधिक अवसर मिलने ही चाहिए। अभिव्यक्ति के विविध रूपों से उन्हें परिचित कराया जाना चाहिए। साथ ही यह भी जरूरी है कि सभी बच्चों को ये अवसर मिलें। बच्चों की ऋणात्मक या नकारात्मक तथा विध्वंसात्मक प्रवृत्ति और उनकी शक्तियों व ऊर्जा को इन माध्यमों से सही दिशा में मोड़ा जा सकता है। कुछ बच्चे संकोची होते हैं या किन्हीं अन्य कारणों से वे स्वयं आगे नहीं आते। उन बच्चों को भी उनकी रुचि व क्षमतानुसार प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

विश्व विजया सिंह : सदस्य, संपादन टीम ''खोजा''। पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में कार्यरत।

संगीत
अभिव्यक्ति का

✍ वरदा विजयिनी

कहते हैं संगीत उसे अभिव्यक्त करता है, जिसे व्यक्त न किया जा सके और जिस पर मौन रहना भी असंभव हो। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति भी जब एक सीमा पर जाकर समाप्त हो जाती है, तब वह संगीत के माध्यम से नए–नए रूप में अभिव्यक्त होती है। जैसा कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कहा है, 'जहां भाषा खत्म होती है, वहां संगीत शुरू होता है।' अभिव्यक्ति की इसी असीमित शक्ति के कारण संगीत मानव–जीवन के विकास के हर चरण से गहराई से जुड़ा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके जीवन में आने वाले हर उतार–चढ़ाव, हर सुख–दुख, हर क्षेत्र, हर अवसर में संगीत घुला मिला रहता है।

बच्चा जब कुछ भी समझता नहीं है तब भी संगीत की लय और स्वर उसे आकर्षित करते हैं। ताली की लयबद्ध आवाज, खिलौनों की अटपटी ध्वनियां, टी.वी. पर संगीत, चलती–फिरती नाचती आकृतियां, रेडियो पर बजता संगीत और इन सबसे बढ़कर मां की लोरी ..... भौतिक जगत से उसकी पहली पहचान होती है। इन्हीं का अनुकरण करते हुए उसकी हर क्रिया, उसकी किलकारियां, उसका हाथ–पैर चलाना सभी कुछ संगीत युक्त होता है। प्रकृति के कण–कण में भी संगीत है, चिड़ियों की चहचहाहट, हवा की सनसनाहट, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों की घंटियों की आवाज, सभी उसके परिवेश का एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं। अन्य वस्तुओं के संपर्क में आने पर उसका संगीत से रिश्ता और आकर्षण कम भले ही हो जाए, पर समाप्त नहीं होता। यही कारण है कि मनुष्य भावाभिव्यक्ति के लिए जाने–अनजाने संगीतयुक्त ध्वनियों का आश्रय लेता ही रहता है।

संगीत के इन्हीं संस्कारों को अपने में संजोये जब बालक विद्यालय में प्रवेश करता है तो उसका सामना एक अलग ही वातावरण से होता है, जो एकरस, बोझिल और कुछ हद तक कठोर भी होता है। यहां वह पुस्तकीय ज्ञान में तो पारंगत हो जाता है पर उसमें दया, सौहार्द, करुणा, प्रेम इत्यादि मानवीय गुणों का विकास हो ही नहीं पाता, जिसकी आज के भौतिक युग में बहुत आवश्यकता है।

प्रारंभिक स्तर पर बच्चों में शिक्षा और विद्यालय के प्रति व्याप्त भय को संगीत के कुशल प्रयोग द्वारा सरलता से समाप्त किया जा सकता है। संगीत के स्वरों में पिरोई छोटी–छोटी कविताएं, गीत इत्यादि उसे आकर्षित करने के साथ–साथ विद्यालय के वातावरण को भी सरस और मनोरंजक बना सकते हैं। लेकिन उस संगीत का चयन बहुत चतुराई पूर्वक किया जाना चाहिए। इसमें प्रयुक्त स्वरलहरियां बहुत सरल होने के साथ–साथ आकर्षक और बच्चों को पसंद आने वाली भी होनी चाहिए। साथ ही जिस परिवेश में वे पले–बढ़े हैं उसके अनुरूप होनी चाहिए।

विषय वस्तु का ज्ञान कराना शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। संगीत द्वारा इसे भी सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। बच्चे लय द्वारा प्रभावित होते हैं। यदि उन्हें वर्णमाला, गिनती, पहाड़े, महीने और सप्ताह के दिनों के नाम लयबद्ध कर संगीत के माध्यम से सिखाए जाएं, तो वे उसे स्वतः ही बिना किसी प्रयास के याद कर लेंगे। आजकल पूर्व प्राथमिक कक्षाओं में ऐसे प्रयोग हो रहे हैं। प्राथमिक स्तर पर तो यह अत्यधिक उपयोगी है ही, पर बड़ी कक्षाओं में भी यह सहायक हो सकता है। मेरी बिटिया ने संस्कृत के रूप एवं विज्ञान के कठिन सूत्र स्वरबद्ध एवं लयबद्ध करके सफलतापूर्वक याद किए। कोई भी चीज याद कराने के लिए यह संगीतबद्ध विधि अत्यंत रोचक और मनोरंजक होती है ।

बच्चों की कल्पना को अभिव्यक्ति किसी भी कला द्वारा मिल सकती है, पर संगीत द्वारा भावाभिव्यक्ति अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक सुगम और सरल होती है क्योंकि उसे अन्य कलाओं की भांति अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी बाहरी उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। संगीत के लिए मात्र स्वर और लय चाहिए, जो हर बच्चे में कहीं कम और कहीं ज्यादा मात्रा में विद्यमान होते हैं।

बच्चों में मानवीय गुणों का विकास करने में भी संगीत अत्यंत सक्षम है। बच्चों के समूह में मिलजुल कर कार्य करने का अभ्यास कराने, उनमें सौहार्द की भावना विकसित करने में संगीत बहुत ही सहायक होता है।

इसके प्रयोग द्वारा एक शिक्षक चंचल, जिज्ञासु, नटखट बच्चों को सरलता से नियंत्रित कर सकता है। मुझे याद है कि हमारे विद्यालय के प्रांगण में प्रार्थना सभा से पहले बच्चों को इकट्ठा करने के लिए देशभक्ति गीतों के रिकार्ड बजाए जाते थे, जिन्हें सुनने को हम सभी बच्चे बहुत लालायित रहते थे और उसके लिए समय से पहले पहुंच जाया करते थे।

निश्चित रूप से शिक्षा में संगीत का समावेश चाहे वह किसी भी रूप में हो, बच्चों में एकाग्रता, सहनशीलता, संवेदनशीलता आदि कई गुणों को विकसित करता है जो

आज के युग की आवश्यकता है और बच्चों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक भी है।

गंभीर प्रयास किए जाएं कि संगीत को शिक्षण सहायक संसाधन के रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रारंभिक स्तर से ही प्रयुक्त किया जाए। यह बच्चों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के साथ–साथ शिक्षा में उनकी रुचि बनाए रखने, विद्यालय के वातावरण को जीवंत और मधुर बनाए रखने, बच्चों में सौंदर्यात्मक, रचनात्मक, सृजनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित करने तथा उनकी अभिव्यक्ति और प्रतिभा को सकारात्मक रूप देने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

वरदा विजयिनी : राजकीय कन्या महाविद्यालय नाथद्वारा, राजस्थान में संगीत की प्राध्यापक हैं।

सीखने का संघर्ष

✍ निशि खंडेलवाल

मैं एक हिन्दी माध्यम स्कूल में पढ़ती थी। अंग्रेजी को उच्च स्तर की भाषा समझती थी। किसी को अंग्रेजी में बोलते, पढ़ते सुनती या देखती तो उसे बहुत होशियार समझती। मैं भी अंग्रेजी लिखना, बोलना सीखना चाहती थी। यह वह तस्वीर थी जो मेरे आसपास की दुनिया ने मुझे दिखाई थी, जहां अंग्रेजी माध्यम स्कूल को अधिक महत्त्व दिया जाता था।

स्कूल में कभी अंग्रेजी लिखने, बोलने, सीखने का कोई खास मौका नहीं मिला। बस कोर्स की एक किताब पढ़ा करते थे। लेकिन मैं जब भी कहीं जाती तो रास्ते में दुकानों पर अंग्रेजी में लिखे नामों को पढ़ने की कोशिश करती। मेरा भाई अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ता था। यदि वह साथ होता तो उच्चारण में गलती होने पर मुझे सही करता। यदि मैं सही पढ़ती तो वह मुझे शाबाशी दिया करता। अकेली होती तो मैं दुकानों पर लिखे शब्दों की स्पेलिंग याद कर लेती और घर आकर उसे बताती। मैं बहुत खुश होती और मेरा हौंसला भी बढ़ता। मैं भाई की कुछ किताबों को भी घर में पढ़ा करती। इससे अंग्रेजी के मेरे उच्चारण को काफी मदद मिली। मुश्किल यह थी कि मैं पढ़ तो लेती थी, पर उसका मतलब कुछ समझ नहीं आता था।

कॉलेज की पढ़ाई के दौरान अंग्रेजी की कुछ किताबें पढ़ना शुरू कीं। हालांकि ये किताबें कोर्स से संबंधित ही थीं। लिखे हुए को समझने की कोशिश में एक पेज पढ़ने पर ही सिरदर्द शुरू हो जाता। ऐसा लगता मानो आंखों के आगे अंधेरा छा गया है और कुछ समझ नहीं आ रहा। आगे की पढ़ाई में तो मैंने जरूरत के हिसाब से अलग–अलग विषयों के महत्त्वपूर्ण अध्यायों का अपनी सहेली की मदद से हिंदी अनुवाद कर लिया। अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर आईं सहेलियों के साथ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते हुए बात करने की कोशिश करती और जब वे बोलतीं, तो मैं बहुत ध्यान से सुनती।

घर में अंग्रेजी अखबार आता था। मां हमेशा उसे पढ़ने के लिए कहती। लेकिन पढ़ने पर मतलब समझ नहीं आता था, इसलिए पढ़ने में बहुत मजा नहीं आता। मैं केवल हेडलाइंस पढ़ा करती थी।

इस परेशानी से निकलने के लिए मैंने अंग्रेजी बोलना सिखाने वाली क्लासेज में जाना शुरू किया। हमें बताया गया कि अंग्रेजी बोलने के लिए आत्मविश्वास होना बहुत जरूरी है। यह भी बताया गया कि हमारे वोकल कॉर्ड्स अंग्रेजी शब्दों को बोलने के अभ्यस्त नहीं हैं, इसलिए हमें दिक्कत होती है। वहां हमेशा एक ही बात पर जोर होता था, कि रोजाना सुबह आइने में देखकर तेज–तेज बोलो I can speak in English । इससे आत्मविश्वास बढ़ता है। सभी को शब्दों की एक लिस्ट दी जाती और उन शब्दों को तेज और जल्दी–जल्दी बोलने का अभ्यास करने को कहा जाता। फिर

उन शब्दों को किसी क्रिया के साथ जोड़कर बोलना होता था जैसे I can walk, I can talk, I can dance आदि। पहले लिस्ट से देखकर बोलते और बाद में बिना देखे। फिर I may, I could, I should । ये सिलसिला तब तक चलता, जब तक कि विद्यार्थी इस तरह के वाक्य जल्दी–जल्दी बोलने में सक्षम नहीं हो जाते। धीरे–धीरे दो वाक्यों को जोड़कर बोलने की तरफ बढ़ते। इस पूरी प्रक्रिया में इन शब्दों को बोलना तो शुरू किया, पर कहां पर can आएगा और कहां could, यह समझ नहीं आया। सर से पूछने पर जवाब मिला कि जब वाक्य बोलना शुरू करोगे, बात करना शुरू करोगे, तो सब समझ आने लगेगा। पहले तो सिर हिला दिया, लेकिन बाद में लगा कि क्या केवल बोलते रहने से गलतियां अपने आप ठीक हो जाएंगी?

विद्यार्थियों से, दी गई एक तस्वीर की सबके सामने व्याख्या करने को कहा जाता। विद्यार्थी एक–एक वाक्य बोलते हुए उसकी व्याख्या करते। बोले गए वाक्यों का आपस में कोई संबंध हो, ऐसा जरूरी नहीं था। अगला चरण कहानी बनाने का होता, जिसमें तस्वीर देखकर कहानी बनानी होती। इस चरण तक पहुंचने के पहले ही मैंने यह कोर्स छोड़ दिया। इसका आंशिक कारण तो पढ़ाई का दबाव था, लेकिन मुख्य कारण था सबके सामने खड़े होकर बोलना, जिसमें झिझक होती थी। कोर्स को करते हुए शब्दों की जो लिस्ट दी गई थी, मैं उसे तो जल्दी–जल्दी पढ़ पा रही थी, लेकिन उसका कोई मतलब न बनने के कारण दिमाग में वे शब्द टिकते नहीं थे। इन शब्दों को पढ़ने के अलावा अंग्रेजी में कुछ और पढ़ने पर न तो मैंने ध्यान दिया और न ही कुछ सुझाया गया।

कोर्स छोड़ तो दिया पर अंग्रेजी सीखने की इच्छा बनी रही। कभी यह भी लगता कि बहुत कठिन है, मैं इसे शायद कभी न सीख पाऊं। आज जब इस कोर्स के बारे में सोचती हूं तो लगता है कि क्या किसी भी भाषा को, कुछ शब्दों या वाक्यों की सूचियों को बार–बार दोहराने भर से सीखा जा सकता है। इसका उत्तर निश्चित तौर पर न होगा, क्योंकि भाषा को सीखने के लिए तो ऐसे माहौल की जरूरत होती है, जहां बोलने–सुनने से लेकर पढ़ने–लिखने तक के भरपूर मौके उपलब्ध हों।

असली जद्दोजहद तब शुरू हुई जब मैंने अपनी पहली नौकरी पर जाना शुरू किया। मेरा काम कुछ इस तरह का था कि मुझे फील्ड–स्टाफ और अफसरों, दोनों के साथ ताल–मेल बैठाना था। फील्ड–स्टाफ के साथ तो किसी तरह की कोई दिक्कत नहीं होती थी, पर जब अफसरों की मीटिंग होती तो एक अजीब सी घबराहट होने लगती। इसकी वजह थी मीटिंग में केवल और केवल अंग्रेजी का प्रयोग। कुछ अफसरों के मूलतः विदेशी होने के कारण मीटिंग में हिंदी के प्रयोग की मनाही थी। मुझे याद है, जब पहली मीटिंग हुई, सारी परियोजनाओं के अफसर एक साथ बैठे और परिचय सत्र शुरू हुआ। मेरे दिल की धड़कन जैसे भागने लगी और दिमाग में इतने सारे ख्याल एक साथ कुलबुलाने लगे कि कैसे बोलूंगी, कुछ गलती हो गई तो बाकी लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे, वगैरह–वगैरह। जैसे–तैसे मीटिंग निपट गई।

लेकिन इस तरह की दिक्कत का सामना तो महीने में एक–दो बार करना ही होता, शुरुआत में तो मैं इन मीटिंग्स से बचने की कोशिश करती। लेकिन दूसरी दिक्कत जिससे हर रोज जूझना होता, वह थी लोगों के ई–मेल पढ़ना और उनके जवाब लिखना, क्योंकि अधिकतर संवाद ई–मेल पर ही करने होते थे। सही मायने में तब मुझे इस दिक्कत का सामना अकेले करना पड़ा। लेकिन इस पड़ाव तक पहुंचते–पहुंचते मुझे इतनी अंग्रेजी तो आ गई थी, कि मैं पढ़कर समझने की कोशिश कर लेती थी। कुछ–कुछ अर्थ

बना भी लेती थी, कितना सही कितना गलत ये नहीं पता। पढ़ते समय थोड़ा पढ़ने तक तो सही रहता। ऐसा लगता कि समझ में आ रहा है, पर थोड़ी ही देर में ऐसा लगता जैसे सिर्फ शब्दों को पढ़े जा रही हूं, मतलब कुछ नहीं बन रहा। असल परेशानी थी टेंसेस की, पास्ट और प्रेजेंट में अंतर कर पाना मुश्किल होता था, has, have, had भी दिक्कत करते थे। इसके अलावा मॉडल्स (could,can,might,may आदि) का इस्तेमाल कहां कैसे होगा, ये भी नहीं पता था। इसके चलते सही अर्थ निर्माण का आत्मविश्वास नहीं था। लिखना, बोलना तो अब भी एक बड़ा संकट था। एक लाइन लिखने में आधा–आधा घंटा लग जाया करता और उस पर भी यह डर, कि कहीं गलत न लिख दिया हो। गलत हुआ तो पढ़ने वाला क्या सोचेगा।

इस समस्या से निजात पाने के लिए मैं आए हुए ई–मेल्स को बहुत ध्यान से पढ़ती, मुझे जो लिखना होता वो उन इ–मेल्स में मिल जाता, तो उसे वहां से कॉपी कर लिया करती। जब पहली बार मासिक रिपोर्ट बनाने की बारी आई, तो मानो सिर पर पहाड़ टूट पड़ा। मैंने पूरी रिपोर्ट को पहले हिंदी में लिखा और फिर उसे अंग्रेजी में ट्रांसलेट कर अपनी एक सहेली को भेजा। उसे रिपोर्ट पढ़कर कुछ समझ नहीं आया। उसने बताया कि मैं प्रेजेंट में बात लिखते–लिखते पास्ट में लिखने लगती, साथ ही शब्दों के चयन में भी कुछ–कुछ गलतियां थीं। उसने फोन पर मेरी पूरी रिपोर्ट को

अंग्रेजी में लिखवाया। अगली रिपोर्ट का सिलसिला भी कुछ इसी तरह चला, पर हर रिपोर्ट के साथ मेरी गलतियों में कमी होती गई। इस नौकरी के बाद बाकी दो जगह जहां मैंने काम किया, वहां भी अंग्रेजी बोलना न आने की कमी को काफी झेला। मुझे इस बात का एहसास होने लगा कि यदि मैं अपने कार्यक्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती हूं तो मुझे इस भाषा को सीखना ही होगा।

मैंने दिल्ली में अंग्रेजी सीखने के तीन महीने के एक कोर्स में दाखिला लिया। इसमें प्रतिदिन तीन क्लासेज (प्रत्येक 45 मिनिट की) होती थीं। क्लासेज में हमेशा यही कहा जाता था कि जितना ज्यादा बोलने का अभ्यास करोगे, उतनी जल्दी व अच्छा बोलना सीख पाओगे। केवल व्याकरण आने, पढ़ने व लिखने से बोलना नहीं आएगा। यह बात दोनों ही कोर्सेज में समान थी। एक अंतर था कि वहां एक क्लास व्याकरण की व दो बोलने के अभ्यास के लिए रखी गई थीं। व्याकरण की कक्षा में अंग्रेजी व्याकरण से संबंधित आधारभूत नियमों को बताया जाता था। यहां पर s, es, ing, may, must, could, can, has, have, had आदि के साथ आने वाली मेरी समस्याएं दूर हुईं। अभ्यास की कक्षा में रोल प्ले, थीम प्रेजेंटेशन, डिबेट, डिस्कशन व अन्य इसी प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से बोलने का अभ्यास करवाया जाता। मैं इन कक्षाओं में यह सोचकर जाया करती कि चाहे जैसे भी बोलूं, गलत या सही, बोलूंगी जरूर, चुप नहीं रहूंगी, नहीं तो शायद कभी नहीं सीख पाऊं। इस तरह बोलने की शुरुआत हुई। अंत में या कभी–कभी बीच में भी वहां उपस्थित मॉडरेटर प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा की गई गलतियों को ठीक करतीं, उस पर अपना फीडबैक देतीं।

सभी विद्यार्थियों को अंग्रेजी अखबार पढ़ने, उसमें से नए–नए शब्दों के मतलब ढूंढ़ने, उन्हें याद करने व बोलने के दौरान उनका इस्तेमाल करने के लिए भी कहा जाता। शुरुआत में काफी गलतियां हुईं। मैं जो गलतियां करती, उनको अखबार में ध्यान से पढ़ते हुए रेखांकित करती और अगली बार बोलते समय ध्यान रखती। यदि गलत बोल भी देती तो किसी के टोकने से पहले उन्हें ठीक कर लेती। मैंने नौकरी छोड़ दी थी, अतः मेरा पूरा ध्यान केवल और केवल अंग्रेजी सीखने पर था। रोजाना करीब 4 से 5 घंटे अखबार पढ़ती। मुश्किल शब्दों के मतलब शब्द–कोश से देख डायरी में नोट किया करती। इस तरह डायरी में हर दिन कुछ नए

शब्द जुड़ते जाते। इन्हें मैं रोजाना पढ़ती और बातचीत के दौरान उपयोग में लेने की कोशिश करती। इस तरह मैंने रोजमर्रा की बातचीत में उपयोग में आने वाले शब्दों की एक छोटी डिक्शनरी बना ली थी।

इस अभ्यास ने मेरी अंग्रेजी लिखने और बोलने की क्षमता में काफी सुधार किया। एक बात और समझ में आई, कि भाषा सीखने के लिए उस भाषा का आपके चारों तरफ होना बहुत जरूरी है क्योंकि भाषा निर्वात में नहीं, उपयुक्त वातावरण में सीखी जाती है।

यह कोर्स करके जब मैं नौकरी में वापस आई तो मुझमें एक नया आत्मविश्वास था, जैसे सब संभाल लूंगी। यहां रिपोर्ट लिखने का काम काफी ज्यादा था और सब मुझे करना था। जब रिपोर्ट लिखना शुरू किया, तो लगा मानो मेरे शब्द–कोश में शब्दों का अकाल पड़ गया। कौन सा शब्द कहां उपयुक्त होगा, इसकी समझ में भी थोड़ी कमी थी। मैंने ऑफिस में उपलब्ध पुरानी अलग–अलग तरह की रिपोर्ट्स को पलटना शुरू किया। रिपोर्ट बनाकर जब अपने अधिकारी को देती, तो वे भी गलतियों के बारे में बतातीं। प्रत्येक नई रिपोर्ट बनाते समय पुरानी रिपोर्ट में की गई गलतियों को याद करती और देखती कि कहीं वही गलती इस रिपोर्ट में तो नहीं दोहराई। रिपोर्ट लेखन के इस अभ्यास ने मुझे ठीक–ठाक लिखना सिखा दिया।

हमारे ऑफिस में एक बार वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने वाली एजेंसी से एक टीम आनी थी। टीम में विदेशी थे। लाजमी था कि बातचीत अंग्रेजी में ही होगी। उस दिन थोड़ी असहजता महसूस हो रही थी। उस दिन एहसास हुआ कि क्लासेज में अंग्रेजी बोलना और कार्य के दौरान किसी दक्ष व्यक्ति के साथ अंग्रेजी में बात करना बहुत अलग है। मैंने अपने आपको इस स्थिति का सामना करने के लिए तैयार किया, उनके साथ बात भी की। बात करते समय कुछ गलतियां हुईं, जिनका एहसास मुझे बाद में हो रहा था।

इसके बाद भी कई ऐसे मौके आए जब किसी मीटिंग, कार्यशाला, सेमिनार आदि में भाग लेना पड़ा। शुरुआत में होने वाली असहजता धीरे–धीरे खत्म होने लगी। अब इस तरह के आयोजनों में बातों को सुनने के साथ–साथ अपने विचारों को भी साझा करने लगी हूं। हालांकि यह अभी तक बहुत ही सीमित स्तर तक हो पाता है। मुझे नहीं पता कि यह कब कहा जा सकता कि किसी भाषा को पूरी तरह से सीख लिया गया है। फिलहाल तो यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी सीखने के सफर में सीखने का संघर्ष अभी भी जारी है।

निशि खंडेलवाल : दिगंतर, जयपुर में अस्सिटेंट फेलो हैं।

अभिव्यक्ति का
रंगमंच

✍ विलास जानवे

रंगमंच कला की एक जीवंत विधा है, जिसमें कलाकारों और दर्शकों के बीच संवेदनशील संवाद होता है। दर्शक कलाकारों की संवेदनाओं और भावनाओं से बंध जाते हैं और कलाकार दर्शकों के प्रोत्साहन से। दोनों का एक–दूसरे से रिश्ता बन जाता है।

रंगमंच पर नाटक करने वालों की अभिव्यक्ति अन्य लोगों से अधिक सशक्त और परिष्कृत होती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि अभिनय क्षमता के कारण उनकी अभिव्यक्ति भी प्रभावी होती है।

अगर हम नाट्यकला के इस गुण का विकास बच्चों में कर पाएं तो कक्षा में उनकी अभिव्यक्ति में चार चांद लग जाएंगे। अब प्रश्न आता है कि यह कैसे किया जा सकता है? उत्तर बहुत सरल है – बच्चों के साथ समय–समय पर नाटक कार्यशालाओं का आयोजन करके और साथ ही उन्हें नाटक करने का मौका देकर।

कार्यशाला में जिन गुणों को बढ़ाने का काम किया जाता है, उनमें प्रमुख हैं–

- निरीक्षण शक्ति
- एकाग्रता
- चेहरे के हाव भाव
- शारीरिक लोच
- नकल करने की क्षमता (केपेसिटी ऑफ कॉपिंग)
- सृजनशीलता (इंप्रोवाइजेशन)
- रंगमंचीय अनुशासन (थियेटर डिसिप्लिन) आदि।

इनके अलावा रंगमंच के प्रकार, तकनीक, ध्वनि, प्रकाश का ज्ञान, कहानी से नाटक बनाने की प्रक्रिया, संवाद बोलना, संगीत आदि की जानकारी भी दी जाती है।

कार्यशाला में मेरा तरीका

हर बच्चे की अभिव्यक्ति की क्षमता अलग–अलग होती है। अतः समग्र रूप से उसे बढ़ाने के लिए मैं एक–दो अभ्यास देता हूं।

पहले अभ्यास में हिंदी के स्वर ''अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः'' को पूरे चेहरे को तनाव देते हुए जोर से बोलने को कहा जाता है। इसके साथ ही उनके हाथ–पांव, बल्कि पूरे शरीर को तान देते हुए बोलने के साथ ही बड़ी–बड़ी मुद्राएं बनाने को कहा जाता है। इस अभ्यास से बोलने, उच्चारण और आवाज के उतार–चढ़ाव का व्यायाम होता है। दूसरा, चेहरे पर लोच आने से मनमाफिक मुंह (भाव) बनाने में सहायता मिलती है। तीसरा, शरीर की लोच और स्टेमिना बढ़ाने में सहायता मिलती है। समग्र रूप से इस व्यायाम से बच्चों की अभिव्यक्ति की शक्ति में इजाफा होता है।

दूसरा अभ्यास है डिग्री का। यह अभ्यास आया है बुखार नापने के यंत्र थर्मामीटर से। हम देखते हैं कि बुखार बढ़ने पर, सेवा करने वाले की चिंता बढ़ती है, तो बुखार का उतरना चेहरे पर सुकून का भाव लाता है। इसका एक और पक्ष है कि हम किसी घटना से जितने दुखी या खुश हैं जरूरी नहीं है कि दूसरा व्यक्ति भी उससे उतना ही दुखी या खुश हो, क्योंकि उस व्यक्ति का उस घटना से अलग संबंध होगा, हमारा अलग। बस इसी सिद्धांत को लेकर हम 1 डिग्री से 10 डिग्री तक किसी भी भाव को, जैसे आश्चर्य, गुस्सा, हंसी, करुणा, भय, वीभत्स आदि को जोर से बोलते हुए पूरे शरीर और चेहरे पर लाते हैं। एक डिग्री पर कम दुःख होगा, दो डिग्री पर उससे ज्यादा, तीन डिग्री पर उससे भी ज्यादा और दस डिग्री पर सबसे ज्यादा दुःख होने का अभिनय किया जाएगा। नाटकशास्त्र के सभी रसों (अद्‌भुत, वीर, श्रृंगार, वीभत्स, भय, हास्य, करुण, रौद्र एवं शांत आदि) को एक से दस डिग्री तक शरीर एवं चेहरे के भाव के साथ व्यायाम करने से निश्चित रूप से चेहरे और शरीर द्वारा व्यक्ति की अभिव्यक्ति की क्षमता को बढ़ावा मिलता है।

ये अभ्यास बड़े ही गुणकारी हैं। इन अभ्यासों को मैंने मूकाभिनय और बाल नाटक कार्यशालाओं में खूब इस्तेमाल किया है बाल कलाकारों को इससे भरपूर लाभ मिला है। इन अभ्यासों से बच्चों में आत्मविश्वास तो बढ़ता ही है, साथ ही मिलजुल कर टीम में काम करने की भावना भी बलवती होती है। सृजनशक्ति बढ़ती है। नाटक, चूंकि जीवन से जुड़ा होता है इसलिए बच्चों की सोचने और समझने की शक्ति बढ़ती है। तुलनात्मक अध्ययन और अन्वेषण की भावना भी पैदा होती है।

वास्तव में एक शिक्षक को भी यह जानना चाहिए कि वह बच्चों में छिपी अभिनय प्रतिभा और क्षमता का उपयोग शिक्षा के मूलभूत उद्‌देश्यों की प्राप्ति के लिए कैसे कर सकता है।

(कार्यशाला के कुछ अन्य फोटो अवरण तीन पर हैं। सभी फोटो लेखक के सौजन्य से।)

विलास जानवे : पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, उदयपुर में कार्यक्रम अधिकारी हैं। बाल रंगमंच, मूकाभिनय और बाधित बच्चों के साथ गतिविधियों से विशेष जुड़ाव है।

भाषा का खेल

✍ मनोज कुमार

दिल्ली मेट्रो की यात्रा में आमतौर पर कुछ भी उत्तेजक या अप्रत्याशित नहीं होता है। यात्राएं प्रायः आरामदेह, लेकिन एकरस होती हैं। मेट्रो के सभी कोच एक जैसे ही होते हैं। और तो और, ठंडी हवाओं की रंगत में भी कोई फर्क नहीं होता। भारतीय रेल में नियमित पासधारी यात्रियों से भिन्न, मेट्रो में चलने वाले लोग आपस में बातचीत या राजनीतिक, सामाजिक बहसबाजी नहीं करते। ज्यादातर युवा यात्रियों के कानों में ईयर प्लग खुंसे होते हैं और उनकी आंखें ई–फोन आदि के एल.ई.डी. स्क्रीन पर जमी होती हैं। रियल एस्टेट, इंश्योरेंस आदि कंपनियों में काम करने वाले युवा कर्मचारी लगातार फोन करके अपने बॉस या ग्राहक को बता रहे होते हैं कि वे बस अब पहुंचने ही वाले हैं। प्रायः बिहार से आने वाले और नई दिल्ली स्टेशन से उतरकर एम्स, छतरपुर या बदरपुर की ओर जाने वाले यात्री दिल्ली वाले अपने रिश्तेदारों को बीच–बीच में फोन करके बता रहे होते हैं कि वे फलां स्टेशन तक पहुंच चुके हैं।

मेट्रो यात्रा की यह एकरसता कभी–कभी ही भंग होती है। ऐसा होने की संभावना तब बनती है, जब कोच में पांच–सात साल का कोई उत्पाती बच्चा या बच्ची सवार हो जाए। इनमें से कुछ तो खूब बातूनी होते हैं, लेकिन प्रायः बात करने से ज्यादा उनकी रुचि छत से लगे दो हत्थों को पकड़कर झूलने में होती है। किसी–किसी बच्चे को स्टील के खंभे के इर्द–गिर्द चक्कर काटना अच्छा लगता है। लेकिन आज मेरे सामने बैठा बच्चा इनमें से किसी गतिविधि में शामिल नहीं है। उस बच्चे की आंखें शब्दों और वाक्यों के साथ नाच रही हैं। वह डिसप्ले बोर्ड की स्क्रीन पर तेजी से भाग रहे एक–एक शब्द को पढ़ता जा रहा है। साथ ही वह उद्घोषणा के प्रत्येक शब्द, उससे बनने वाले वाक्य, विमर्श और उनके अर्थ का संज्ञान ले रहा है। शब्द की ध्वनियों से वह उसी आनंद के साथ खेल रहा है, जिस आनंद के साथ इस उम्र के बच्चे कंचे खेलते हैं।

बच्चे भाषा से खेलते हैं, इसमें कुछ अनोखी बात नहीं है, लेकिन स्कूली शिक्षा में बच्चे को भाषा से खेलने का प्रायः मौका नहीं मिलता, यह हमारी शिक्षा पद्धति का दुखद पहलू है।

बच्चे जब भी कोई नया कौशल या ज्ञान अर्जित करते हैं, तो वे बार–बार उसे आजमाकर देखना चाहते हैं। जब किसी बच्चे को तैरना आ जाता है, तो बार–बार वह नदी या तालाब की ओर भागता है। साइकिल सीखने के बाद वह सपने में भी साइकिल ही चलाता है। पेड़ पर चढ़ना आ जाए, तो वह सबसे ऊंची डाली पर चढ़कर आकाश को छू लेना चाहता है। कुछ ऐसा ही उस बच्चे के साथ होना चाहिए, जिसे पढ़ना–लिखना आ गया है। सामने वाले बच्चे

के साथ आज कुछ ऐसा ही होता हुआ मुझे दिख रहा है। लेकिन यह दृश्य हमारी स्कूली शिक्षा में आम क्यों नहीं है? साल–दर–साल हमें क्यों यह पता चलता है कि पांचवीं कक्षा के बच्चे दूसरी कक्षा की किताब नहीं पढ़ पा रहे हैं?

कारण अनेक होंगे, मसलन पेड़ पर चढ़ने के आनंद से हम पढ़ने के आनंद की तुलना नहीं कर सकते, क्योंकि पेड़ पर चढ़ना मुख्यतः एक शारीरिक गतिविधि है। पेड़ पर चढ़ने के आनंद में एक प्रकार के सामर्थ्य का सुखद अहसास तो है ही, खतरे से खेलने का रोमांच भी शामिल है। लेकिन सामर्थ्य का यह बोध तो पढ़ना सीखने के बाद भी होना चाहिए। छपे हुए शब्दों में आप खुला आकाश भी देख सकते हैं और नदी की अतल गहराई में जाकर शीतल जल का स्पर्श भी महसूस कर सकते हैं–बेशक मन की आंख और स्पर्श–इंद्रियों से। फिर किसी दूर बैठे दोस्त को चिट्ठी लिखकर अपनी बात कहने में भी सामर्थ्य का बोध तो होना चाहिए। ऐसे अनेक सार्थक संदर्भ हैं, जिनमें साक्षरता से जुड़े कौशलों को आजमाते हुए पढ़ना–लिखना सीख सकते हैं। ऐसा नहीं, कि इस ओर शिक्षाविदों का ध्यान नहीं गया है। पिछली शताब्दी में गिजुभाई ने सचमुच के पत्र लिखवाकर अपने विद्यार्थियों को लिखने का अभ्यास करवाया था। जॉन डिवी ने काफी पहले इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि स्कूल के शुरुआती दिनों में बच्चे काफी समय छूछी संकेत–प्रणाली से जूझते हुए बिताते हैं, चाहे वह गणितीय संख्या–प्रणाली का अभ्यास हो या वर्णमाला को लिखने और उच्चरित करने का अभ्यास। ये संकेत छूछे इसलिए हैं, क्योंकि वर्णमाला के मामले में दृश्य संकेत यानी लिखे हुए अक्षर महज ध्वनि–संकेत यानी उच्चरित ध्वनियों तक ही पहुंच पाते हैं। इससे आगे ध्वनि संकेत बच्चे के किसी जीवंत अनुभव को संकेतित नहीं करते, क्योंकि वर्णमाला का अभ्यास करने वाले बच्चे बमुश्किल कुछ शब्द भर उच्चरित करते हैं, जैसे ठ से ठठेरा। पढ़ना–लिखना सिखाने की पारंपरिक प्रणाली जो वर्ण, मात्रा, शब्द से होकर वाक्य और पाठ तक आने में वर्षों लगा देती है, स्कूली जीवन की शुरुआत में ही इतना छूछापन और निरर्थकताबोध बच्चों के जेहन में भर देती है कि पढ़ना प्रायः उनको साइकिल चलाने, तैरने या अपने खिलौने के पुर्जे–पुर्जे को अलग कर फिर से जोड़ने जैसा आनंद नहीं देता है।

लेकिन फिलहाल सामने बैठे बच्चे को, भाषा खेलने का जो साधन मुहैया करवा रही है वह किसी भी खिलौने से ज्यादा जीवंत और आनंददायी है। मेट्रो की यात्रा आखिर इतनी उबाऊ भी नहीं है।

मनोज कुमार : हिंदी साहित्य में एम.फिल. करने के बाद महाविद्यालय स्तर पर अनेक वर्षों तक अध्यापन। दिगंतर, जयपुर में सीनियर फेलो के रूप में चार साल तक कार्य करने के बाद आजकल रूम टू रीड, इंडिया दिल्ली में हैं।

उसका स्कूल

✍ आलोक पांडेय

बेलपहार स्टेशन पर मैं ट्रेन का इंतजार करते हुए पानी की टंकी से लगातार ओवरफ्लो होते हुए पानी की ओर देख रहा था। अभी पिछले हफ्ते ही अखबार में छपा था, 'बेलपहार स्टेशन पर पानी की भीषण किल्लत से यात्री बेहाल।' अब एक हफ्ते में ही इतना पानी आ गया कि लगातार कई घंटों से ओवरफ्लो हुए जा रहा था। अब इसे समस्या का त्वरित समाधान कहें या एक नई समस्या का आगाज। बहरहाल, इन्हीं विचारों में उलझे हुए मेरी नजर उन पर पड़ी। वे तीन थे। बदन पर पुराने, मैले कपड़े। तीनों के हाथों में एक–एक पुरानी झाड़ू। तीनों बारी–बारी से अपनी जेबों से कुछ मुड़े हुए नोट निकाल और रख रहे थे, मानो बता रहे हों कि, "मेरे पास इतने, तेरे पास कितने?"

उनमें से दो तो कुछ देर बाद प्लेटफॉर्म के एक छोर पर लगे नल पर नहाकर और फिर से वही कपड़े पहनकर वापिस प्लेटफॉर्म के दूसरे छोर की ओर निकल गए, जहां हर ट्रेन का जनरल डिब्बा रुकता है।

पर एक नहीं गया।

वह मेरी बेंच से कुछ दूर, एक पेड़ के नीचे बैठकर, गिट्टियों के साथ एक खेल खेलने लगा, अकेले। खेल का नाम तो याद नहीं, पर हां बचपन में मैंने भी वह खेल खेला था। वह एक गिट्टी हवा में उछालता और उसके नीचे आने से पहले जमीन पर पड़ी गिट्टी उठाता और फिर उस उछाली गई गिट्टी को भी लपक लेता। करीब दस मिनट तक मैं उसे यूं ही खेलता देखता रहा। इस बीच कई बार मन में आया कि उठकर जाऊं और उसके पास बैठूं। मेरे हाथ में भारत के गौरवशाली इतिहास पर लिखी एक दिलचस्प किताब थी। उस वक्त मैं भारत और दूसरे देशों के बीच के रिश्तों के बारे में पढ़ रहा था। पर इस वर्तमान में देश के भविष्य को चुपचाप एक कोने में खेलता और उसके चेहरे पर आते–जाते भावों को देखना उस इतिहास से कहीं ज्यादा दिलचस्प लगा।

वह करीब आठ साल का रहा होगा।

उस छोटे से स्टेशन पर मुझे अपनी ट्रेन के लिए अभी करीब और एक घंटा इंतजार करना था। वाईफाई की सुविधाओं से लैस ट्रेनों के वादों के दौर में आज भी आदतन रेलगाड़ियां एक–आध घंटे देर से चलने में अपनी शान समझती हैं। बिलकुल सरकारी ऑफिसरों की तरह, जो अगर देर से न आएं, तो बात ही क्या?

किताब के पन्ने अब नीरस से लगने लगे थे और वह मुझे अपनी ओर खींचने लगा था। मैं उठा और उसे अपनी ओर आने का इशारा किया। वह अपने हाथों में अपनी झाड़ू लहराता हुआ एक अलग ही चाल में मेरी ओर आया और बोला, "क्या हुआ?"

उसकी आवाज में गजब का आत्मविश्वास था। उसका लहजा बिलकुल ऐसा था जैसे आजकल के पुलिस वालों का होता है, किसी आम आदमी के द्वारा सवाल कर लेने पर।

मैंने पूछा, "क्या नाम है?"

"रामा।"

"कहां रहते हो, यहां क्या कर रहे हो?"

"खरमसया रहता हूं और मांगने के लिए आता हूं।"

"मांगने के लिए? रोज खरमसया से आते हो?"

"हां, झाड़ू मारा और मांगा। सुबह टिहराखण्ड से आया हूं और अभी अहमदाबाद से वापिस जाना है।"

मैं भी अहमदाबाद एक्सप्रेस का ही इंतजार कर रहा

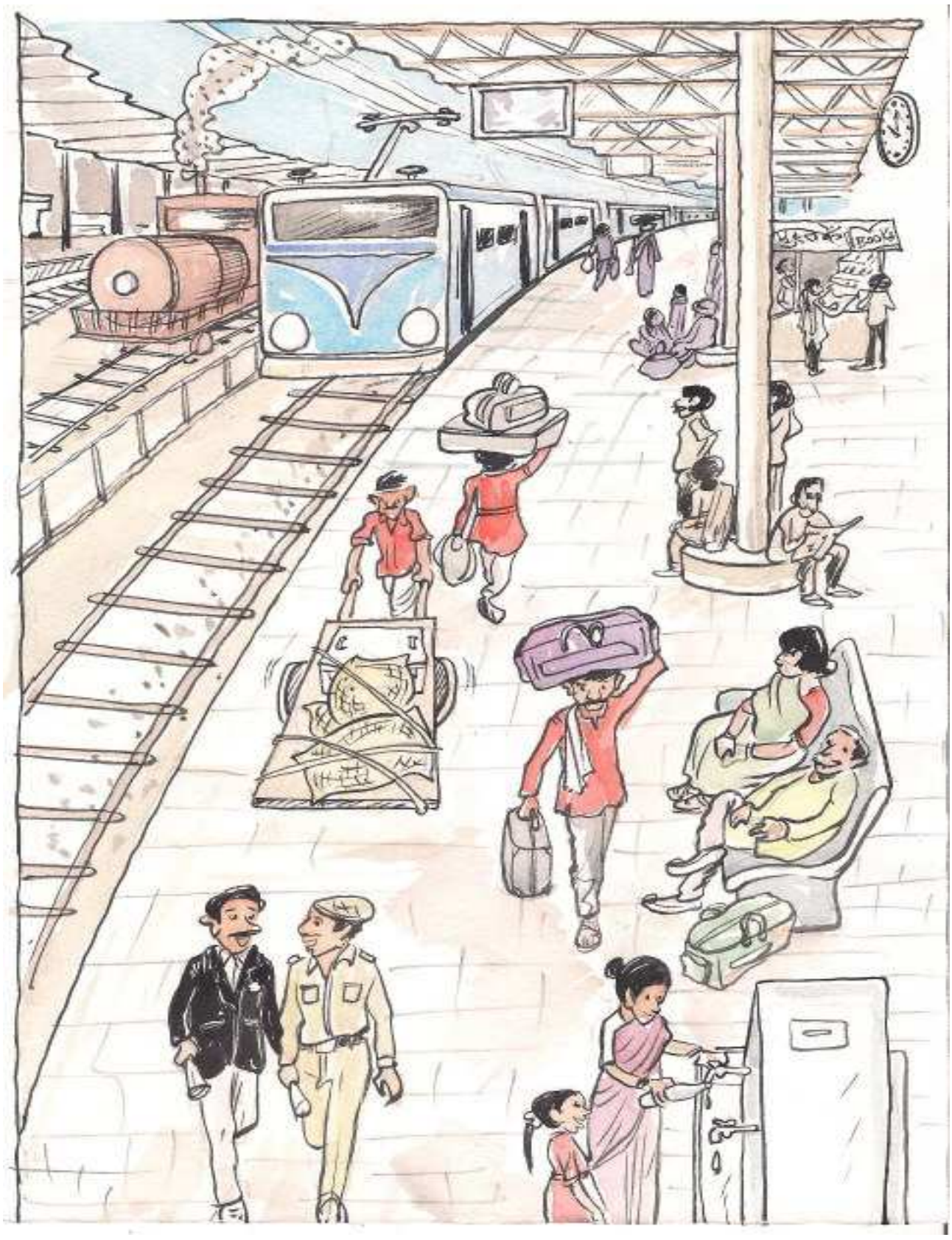

था। मैंने आगे पूछा, "घर पर कौन हैं? मम्मी–पापा कहां रहते हैं?"

"मम्मी नहीं है। पापा झाड़ू–चटाई बनाते और बेचते हैं। खरमसया ही रहते हैं।"

"टिहराखण्ड एक्सप्रेस तो खरमसया पांच बजे सवेरे ही आ जाती है और यहां सात बजे पहुंच जाती है, तो तुम इतनी सुबह–सुबह आ जाते हो?" कहते–कहते मैंने अपना एक हाथ उसके कंधे पर रख दिया।

कंधे पर हाथ रखने से उसे कोई खास दिक्कत नहीं हुई और बोला, "उसमें क्या है? रोज आता हूं और रोज जाता हूं।"

"तुम्हारे दोस्त कहां गए?"

"वो उधर गए हैं, आगे। जनरल डिब्बे में चढ़ेंगे। मैं स्लीपर में जाऊंगा, इसलिए यहां हूं।" इतना कहकर वह चला गया।

मैं भी उसके पीछे–पीछे चला। वह स्टेशन पर चाय–पानी के एकमात्र स्टॉल पर रुका। उसने स्टॉल वाले से एक बिस्कुट मांगकर खाया। तब तक ट्रेन के आने का संकेत हो चुका था।

मैं भी उसी स्टॉल के सामने पानी की बोतल खरीदने खड़ा हो गया। उसने फिर स्टॉल वाले से बिस्कुट मांगा। मैंने पूछा, ''बिस्कुट के पैसे तो देगा न?''

रामा बोला, "क्यूं, सुबह इसे चालीस रुपए चिल्लर दिए हैं, दो बिस्कुट तो खिलाएगा ही।"

रोज जो सिक्के वह ट्रेन में मांगकर लाता है, वे इसी स्टॉल वाले को देता और बदले में नोट ले लेता है, साथ ही साथ चार–पांच रुपए के बिस्कुट अलग से। इस क्षेत्र में खुले सिक्कों की काफी किल्लत है और कालाबाजारी भी होती है। 100 सिक्के देने पर कहीं–कहीं 110–115 रुपए मिल जाते हैं। रामा के लिए तो सिक्कों के एवज में नोट और कुछ बिस्कुट मिल जाना, इतना ही काफी था। उसकी पुरानी पैंट की जेब उन सिक्कों का बोझ शायद ही संभाल पाती, इसलिए वह उनके बदले नोट ले लेता है। दुकानदार भी चिल्लर पाकर खुश होकर उसे बिस्कुट दे देता है।

फिर हम दोनों एक पेड़ के नीचे बैठ गए। मैंने कहा, "चल तेरा वाला खेल खेलते हैं।"

उसने तत्परता से पांच गिट्टियां इकठ्ठी कीं और खेल शुरू हो गया। खेलते हुए मैंने पूछा, "स्कूल जाता है?"

"नहीं।"

"कभी नहीं गया?"

"नहीं, वहां क्या करूंगा?"

"घर पे कोई कहता नहीं जाने को?"

"नहीं।"

"स्कूल देखा तो होगा, कैसा होता है?"

"नहीं देखा। कैसा भी हो, मुझे क्या?"

"तेरा कोई दोस्त नहीं जाता?"

"जाता है न अजय, खरमसया में ही।"

"तो उसने बताया नहीं स्कूल कैसा होता है।"

"वो क्यूं बताएगा? और मुझे पूछना भी नहीं। यहां ज्यादा मजा आता है।"

इस बीच दूर से ट्रेन आती नजर आने लगी थी।

अब उसने मुझसे पूछना शुरू किया– "किसमें जाएगा? कौन सा टिकट है?"

"जनरल टिकट है रिजर्वेशन नहीं है। किसी में भी चढ़ जाऊंगा।"

"जनरल डिब्बा आगे है, उसमें चढ़ जा।"

"नहीं रे जनरल में काफी भीड़ होती है, रिजर्वेशन में चढ़ जाऊंगा।"

"अरे वहां टी.टी. पैसे छील लेगा।"

"और अगर ए.सी. में चढ़ा तो?"

"और ज्यादा छील लेगा।"

मैंने आगे कहा "तू तो रोज आता–जाता है, टी.टी को तो जानता होगा?"

"हां–हां, रोज देखता हूं आते–जाते।"

"तो मेरी सेटिंग करा दे यार, टी.टी से बोल के एक सीट दिला देना।"

ट्रेन प्लेटफॉर्म पर आ गई थी। हमारा खेल और बातचीत दोनों खत्म हो गए। मैंने उसे अंत में हरा दिया था, जिस पर उसने अपने सिर पर दो हाथ जमाए और बोला, "चल तू जीत गया।"

मैं कुछ कम भीड़–भाड़ा वाला डिब्बा ढूंढने लगा, तो रामा ने आवाज दी "इधर आ जा भाई, टी.टी इसमें है, सीट मिल जाएगी।"

मैं उसके बताए डिब्बे में चढ़ गया। टी.टी से बोला "सर एक सीट दे दीजिए रायपुर तक।" फिर रामा की तरफ इशारा करके बोला, "रामा कहता है आपको जानता है, सीट मिल जाएगी।"

टी.टी. बाबू ने उसकी ओर देखा, हल्का सा मुस्कराया, और बोला, ''यहीं बैठ जाइए, रसीद बना देता हूं।''

रामा खुश हुआ कि मुझे सीट मिल गई। जाते वक्त उसने ताली दी और निकल पड़ा अगले डिब्बे में झाड़ू लगाने,

मुझे अनगिनत ख्यालों के भंवर में उलझा हुआ छोड़कर!

खरमसया निकल गया। मैंने सोचा, रामा उतर गया होगा। पलक झपकी, कि कंधे पर किसी ने हाथ रखा, बोला, "भाई खाएगा?"

मैंने देखा रामा के हाथ में कुरकुरे का पैकेट था। वह मुझे खाने के लिए इशारा कर रहा था।

मैंने पूछा "ये कहां से मिला?"

"उधर झाड़ू लगाया ना, तो उस बाबू ने दिया।"

मैंने मुस्कराकर उसके गाल पर हल्के से चपत लगाई। उसके मासूम चेहरे पर चमक और बढ़ गई। मुस्कराता हुआ वह आगे निकल गया।

उसका चेहरा अब तक आंखों से होते हुए दिल में उतर चुका था।

रामा मेरा नया दोस्त। ये सब उसने किसी स्कूल से नहीं पर जिंदगी से सीखा था...जीने का तरीका और जज्बा। उसमें हिम्मत और आत्मविश्वास तो था ही और उसे जिंदगी से जूझना भी आता था।

उससे मिलकर ऐसा लगा..कि हां, सीखना अभी बाकी है.....बहुत कुछ सीखना बाकी है।

आलोक पांडेय : अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, रायपुर में कार्यरत हैं।

स्कूल, स्वतंजता और अभिव्यक्ति

✍ वृजेश सिंह

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक मौलिक अधिकार है। लेकिन लोगों के सामने अपनी बात रखने का डर, अभिव्यक्ति की राह में रुकावट बन जाता है। बात कहते–कहते गले में अटक जाती है। सोच में पड़ जाते हैं कि अपनी बात कहें या न कहें। स्कूल शिक्षा से जुड़े आयामों की पड़ताल से पता चलता है कि भयमुक्त अभिव्यक्ति भी स्कूल के वातावरण का एक अभिन्न हिस्सा है, जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है।

संवाद का मूलभूत कौशल तो बिना किसी पाठशाला में दाखिला लिए भी आ जाता है, लेकिन जब बात अभिव्यक्ति के विभिन्न तरीकों की हो तो स्कूल के महत्त्व से इंकार नहीं किया जा सकता। हालांकि इक्कीसवीं सदी में संचार के विभिन्न साधनों के विस्तार ने पूरा परिदृश्य बदल दिया है।

स्कूल में बाकी बच्चों के सामने मंच पर बोलना, निबंध लिखना और कक्षा में अपनी बात बेझिझक कहने की प्रक्रिया सीखने के कई स्तरों से गुजरती है। स्कूल में पहले दिन से ही अपनी बात रखने, तुतलाकर न बोलने, टेढ़ा–मेढ़ा न लिखने, जैसा कहा जाए वैसा करने का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दबाव बनना शुरू हो जाता है। अभिव्यक्ति की जो सहजता वे घर और आस–पड़ोस में महसूस करते हैं, वह स्कूल में धीरे–धीरे होने वाली समाजीकरण की प्रक्रिया में धुंधलाने लगती है।

शायर 'नीर' अपने बचपन के अनुभवों को साझा

करते हुए कहती हैं कि उन्होंने कुछ दिनों में ही बारहखड़ी सीख ली थी, लेकिन उन्हें अध्यापकों की पिटाई से बहुत डर लगता था, इस कारण वे आगे स्कूल नहीं गईं। आज वे लकड़ी की कठपुतलियां बनाने में कावड़ कलाकार अपने पति मांगीलाल मिस्त्री के काम में सहयोग करती हैं। उनको मुहावरों और उनके अर्थों में विशेष रुचि है। बातचीत के दौरान वे उनका स्वाभाविक रूप से इस्तेमाल करती हैं। उनके अर्थ भी बताती हैं। चलन से बाहर हो चुके तमाम मुहावरे, बीते जमाने की याद दिला जाते हैं।

नीर को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि बच्चों को अगर बोलने, पढ़ने और लिखने के नाम पर डराया जाता है, उनके खेलने और घूमने पर पाबंदी लगाई जाती है, उनसे परीक्षाओं के दौरान बार–बार कहा जाता है कि पढ़ो–पढ़ो, नहीं तो फेल हो जाओगे, तो हम उनके मन में एक अनजाना सा डर भर देते हैं, जो उनके अवचेतन मन का हिस्सा बन जाता है। जब कभी चुनौतीपूर्ण परिस्थिति आती है तो उनका यही डर सतह पर आ जाता है। वे परिस्थितियों का सामना करने से बचना चाहते हैं। वे अपनी बात कहने में घबराते हैं, डरते हैं। जो बच्चे घरेलू हिंसा और आसपास के झगड़े को देखते हैं, उनके लिए 'बोलना' भी डर पैदा करने वाला माध्यम बन सकता है। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से हम उनकी अभिव्यक्ति को बाधित करते हैं। ऐसे माहौल में अभिव्यक्ति की सहजता पर भय का छाता तन जाता है।

बच्चे स्कूल में परीक्षाओं के दौरान होने वाले मूल्यांकन से तनावग्रस्त हो जाते हैं। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के प्रोफेसर से डर के बारे में बात हो रही थी कि इंसान कायर क्यों होता है? तो उन्होंने बड़ी सहजता के साथ कहा कि उसे मूल्यांकन का डर होता है, कि लोग क्या कहेंगे। उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी, इस बात की कल्पना, विचार व भावना कायरता का कारण बनती है। यह बात स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के अनुभवों से सीधे–सीधे जुड़ती है। अगर वे अपनी बात सही तरीके से नहीं रख पा रहे हैं, उनकी कक्षा के सहपाठी उन्हें हतोत्साहित करते हैं तो अपनी बात क्या वह बिना डरे, सहजता के साथ पूरी कक्षा के सामने रख पाएंगे? कुछ के लिए शायद हां, लेकिन अधिकांश बच्चों के लिए ऐसी परिस्थिति असहज करने वाली होती है, कुछ बच्चे तो इतने डर सकते हैं कि रोने लग जाएं।

दरअसल यह सारी स्थिति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और भयमुक्त अभिव्यक्ति का बेहतर माहौल बनाने की दिशा में गंभीरता से सोचने और कदम उठाने की समसामयिक मांग को सामने रखती है, ताकि बच्चे के लिए अपनी बात कहना, लिखना, पढ़ना सहज हो जाए। वह बेझिझक अपनी बात रखे, अध्यापकों से सवाल पूछे और माता–पिता से अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करे, ताकि वह अपनी बात बिना किसी संकोच के कह सके। अध्यापक उन्हें अभिव्यक्ति के तमाम माध्यमों को अपनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। अंत्याक्षरी जैसे खेल मन की बात को स्मृति और यादों से जोड़ने का काम करते हैं। किसी तस्वीर बनाने वाले खेल को खेलते समय बच्चे अपने बिखरे अनुभवों को एक साथ लाने की कोशिश कर रहे होते हैं।

राजस्थान के डूंगरपुर जिले के प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूलों में 'मन की बात' और 'स्वतंत्र लेखन' नाम की गतिविधियां संचालित हो रही हैं। जिन स्कूलों में गतिविधि को पूरी संवेदनशीलता और गंभीरता के साथ क्रियान्वित किया गया, वहां पर बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता

में उल्लेखनीय सुधार हुए हैं। प्रारंभिक स्तर पर मौखिक अभिव्यक्ति में सकारात्मक बदलाव देखने को मिले, लेकिन सत्र के आखिर तक आते–आते स्वतंत्र लेखन की गतिविधि ने बच्चों को अपने रोजमर्रा के अनुभवों और त्यौहारों पर लिखने के लिए प्रेरित किया, जिससे उनके लेखन में सुधार हुआ है।

कुछ स्कूलों में तो बच्चों ने खुद से कहानियां बनाना और अध्यापकों को दिखाना शुरू किया। शुरुआत में अध्यापकों का कक्षा–कक्ष में बच्चों से संवाद काफी उपयोगी होता है। इससे बच्चों को अपनी बात रखने का मौका मिलता है, उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। छठी से आठवीं कक्षा तक के बच्चों को स्वतंत्र लेखन के लिए प्रेरित करना, उनके अपने अनुभवों से जुड़कर लिखना, लिखने की निर्जीव लगने वाली प्रक्रिया को जीवंत बनाता है। 'बच्चों की भाषा और अध्यापक' में प्रोफेसर कृष्ण कुमार कहते हैं, 'कि लिखना भी एक तरह की बातचीत है।'

शुरुआती स्तर पर स्वतंत्र लेखन में विचार को महत्त्व देना चाहिए। व्याकरण पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करने से बच्चे लिखने के काम से हतोत्साहित हो सकते हैं, लेकिन अगर उनको लिखने में आनंद आने लगे और वे रुचि के साथ लिखने लगते हैं तो आगे का सफर आसान हो जाता है। डूंगरपुर के कई स्कूलों में बच्चों ने स्कूल की पिकनिक, शैक्षिक भ्रमण, होली, दोस्ती, चिड़िया क्या करती है, सड़क, ऑटो, शादी जैसे अनेक विषयों पर अपने अनुभवों को लिखा, जिनका स्तर किसी किताब से रटकर उतारे गए उत्तरों से बेहतर था। कई बार तो कक्षा में होने वाली बातचीत से निकले विषयों को उन्होंने लेखन का आधार बनाया और पूरी कक्षा ने अपने–अपने विचार लिखकर साझा किए।

बच्चों से कक्षा–कक्ष में संवाद की मौजूदगी पूरी प्रक्रिया को गति देने वाली होती है, जो अध्यापकों की सक्रिय भागीदारी की मांग करती है कि वे बच्चों की बातों में रुचि दिखाएं, उनकी बातों को ध्यान से सुनें। इस तरह का माहौल चित्रकला के कालांश को भी रोचक बनाता है। बच्चे किसी बोर्ड पर या कक्षा की दीवारों पर हाथ से बने चित्र लगा सकते हैं। उनको चित्र बनाने का विषय दिया जा सकता है। इसको स्वतंत्र लेखन की तरह से बच्चों के ऊपर भी छोड़ा जा सकता है।

स्कूल में रोजाना होने वाली प्रातःकालीन सभा को रोचक बनाना बच्चों को अभिव्यक्ति के अवसर देने का सबसे आसान तरीका है। प्रातःकालीन सभा के लिए अलग–अलग दिन अगर विभिन्न कक्षाओं के बच्चों को मौका मिलता है तो उनकी अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित होगी, उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। यह आत्मविश्वास कक्षा में बेहतर करने के लिए भी प्रेरित करेगा। बच्चों को निर्णय लेने के लिए और गीतों का चुनाव करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इससे भयमुक्त अभिव्यक्ति का माहौल बनाने की दिशा में होने वाले प्रयासों को ठोस आधार दिया जा सकता है।

ऐसा माहौल बच्चों की भाषा, सोच, समझ और संवेदनशीलता के विकास में काफी सहायक हो सकता है। वे अभिभावकों और शिक्षकों की बातों को महत्त्व देंगे। अगर उनको महसूस होता है कि बड़े भी उनकी बात को महत्त्व दे रहे हैं, वे अपनी कक्षा के बाकी साथियों को अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करेंगे। एक–दूसरे की सहायता और आपस में बातचीत के माध्यम से पढ़ने और लिखने को बढ़ावा देंगे। वे अपनी बेहतर समझ से आने वाले कल के लिए रोशनी की किरण को राह दे सकते हैं, जो अभिव्यक्ति के भय के अंधेरे को दूर करने में सहायक होगी और स्कूलों में भयमुक्त अभिव्यक्ति का माहौल बनेगा।

वृजेश सिंह : माखनलाल चतुर्वेदी विश्वविद्यालय, भोपाल से पत्रकारिता में स्नातकोत्तर। 'गांधी फेलोशिप' के तहत राजस्थान के सरकारी स्कूलों में दो साल तक कार्य किया है। वर्तमान में स्वतंत्र पत्रकारिता से जुड़े हैं।

अभिव्यक्ति की शक्ति

✍ शैलेंद्र दशोरा

वाल्तेयर ने कहा कि, ''हो सकता है मैं आपके विचारों से सहमत न हो पाऊं, फिर भी मैं विचार प्रकट करने के आपके अधिकारों की रक्षा करूंगा''।

लेकिन यह तब होगा जब आप अपने विचार अभिव्यक्त करेंगे और विचार केवल बोलकर अभिव्यक्त नहीं किए जाते। हमारी पांचों ज्ञानेंद्रियां– देखना, सुनना, छूना, सूंघना और चखना– हमारी अभिव्यक्ति की यात्रा में बेहद जरूरी साथी हैं। हो सकता है हर व्यक्ति में पांचों ज्ञानेंद्रियां बराबरी से सक्रिय न हों, लेकिन हर व्यक्ति अभिव्यक्ति की कामना और अधिकार रखता है। हर एक की अभिव्यक्ति एक जैसी नहीं हो सकती। कई जन अपनी इंद्रियों के इस्तेमाल में स्वतः ही कंजूसी करते हैं या फिर झिझक या घमंड के वशीभूत प्रयोग नहीं करते। लिखना, पढ़ना, बोलना, समझना, अनुभवों के साथ ही अभिव्यक्त होते हैं।

शिक्षा की नींव बचपन में पड़ती है। शिक्षा अनौपचारिक हो या औपचारिक, बिना अभिव्यक्ति के अधूरी है। शिक्षक और अभिभावकों के हाव–भाव, बोली, व्यवहार बच्चों को प्रभावित करते हैं। क्योंकि वास्तव में यह उनके विचारों की अभिव्यक्ति ही है।

बच्चों में असीम संभावनाएं होती हैं। बचपन से उन्हें अगर अपने को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहन मिले, तो वे किसी क्षेत्र में पीछे न रहें। ज्ञान के साथ यदि अभिव्यक्ति अच्छी हो तो संचार का आनंद बढ़ जाता है। किसी विषय की मौलिक जानकारी जितनी अहम होती है उससे अहम होती है, अभिव्यक्ति की क्षमता। उत्तम अभिव्यक्ति की क्षमता से उन्हें दूसरों की बातें समझने, अपनी बात समझाने में बेशुमार मदद मिलती है। उसकी सक्रियता न केवल शैक्षणिक माहौल में सकारात्मकता फैलाती है बल्कि अन्य लोगों की भागीदारी भी सुनिश्चित करती है। जिन कक्षाओं में चहल–पहल होती है वहां माहौल ठहाकों से गूंजता है। वहीं सकारात्मक बहस भी छिड़ती है। एकल अभिव्यक्ति सामूहिक अभिव्यक्ति में बदलकर सभी को सीखने का अवसर प्रदान करती है।

इसी कारण गुरुजन आरंभ से ही बच्चों की अभिव्यक्ति को तराशने की कोशिश करते हैं। बच्चे भी बेझिझक प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा को शांत करते हुए शिक्षा के आयामों को सीखते जाते हैं।

कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं :–

- कभी भी संवाद और उसका माध्यम टूटना नहीं चाहिए,
- बच्चों में प्रश्न पूछने की उत्सुकता बनी रहनी चाहिए,
- आंखों में आंखें डालकर बात करने की आदत डालनी चाहिए,
- सुनने और समझने का धैर्य विकसित करना चाहिए।

आवश्यकता इस बात की है कि हम बच्चों की अभिव्यक्ति को शुरू से ही प्रोत्साहित करें ताकि वे सोचने–समझने वाले और मौलिक विचार रखने वाले नागरिक बनें।

शैलेंद्र दशोरा : भारतीय डाक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी हैं। नवाचारों में गहरी अभिरुचि रखते हैं। आजकल पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र,उदयपुर में निदेशक हैं।

प्रशिक्षक हैं तो...

✍ मोहम्मद उमर

सर्व शिक्षा अभियान, राजस्थान प्रत्येक वर्ष गर्मियों में शिक्षक प्रशिक्षण आयोजित करता है। इस वर्ष मुझे टोंक जिले में आयोजित शिक्षक प्रशिक्षण में सहयोगी प्रशिक्षक के रूप में आमंत्रित किया गया था। मुझे गणित विषय के अलावा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तथा शिक्षा के अधिकार अधिनियम पर सत्र लेने थे। इस दौरान संभागियों के सामने यह बात जोर देकर रखनी होती थी कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा एक अलग तरह के शिक्षक की अपेक्षा करती है। ये 'अलग तरह क्या होता है? यह पहले से कैसे अलग है?' इसे क्रम में सीखने की प्रक्रियाओं, ज्ञान की बदलती अवधारणा, सूचना और ज्ञान के फर्क का अहसास कराते हुए तमाम बातें करनी होती थीं। जैसे बच्चे से दोस्ताना रिश्ता बनाएं, उनके अनुभवों को आधार बनाकर शिक्षण करें, हर बच्चा अलग तरीके से सीखता है, अतः विभिन्न तरीकों का प्रयोग करें आदि आदि।

शुरुआती दो प्रशिक्षणों के बाद मुझे लगा कि बात कुछ बन नहीं रही है। सैद्धांतिक बातों में संभागियों को कोई नयापन नहीं लग रहा है। उन्हें लगता था कि ऐसा तो वे करते ही आए हैं। समूह में जो गतिविधियां उन्हें करने को दी जाती थीं, उनमें दो–चार शिक्षक ही रुचि लेते थे। मेरे साथी प्रशिक्षक बहुत ही रोचक ढंग से, हाव–भाव से अभिनय करते हुए कविता, कहानी सुनाते थे। वे शिक्षक साथियों से भी अभिनय के साथ कविता गाने या कहानी सुनाने का आग्रह करते थे, परंतु बहुत सकारात्मक परिणाम नहीं मिल पा रहे थे।

प्रशिक्षण सत्र पूरे डेढ़ महीने चलने थे। एक जैसी बातें करते–करते मैं भी ऊबने लगा था। मैं सोचने लगा था कि सत्रों के बीच कई बार ये बात कहता हूं कि सीखने की प्रक्रिया में गतिविधियों का रोचक तथा अनुभवों से जुड़ा होना आवश्यक है, लेकिन यदि मेरी स्वयं की बातों में ही शिक्षकों को आनंद या रोचकता नहीं मिलेगी तो भला इनका असर भी कितना हो सकेगा ? कुछ नया करने की जरूरत है।

इसी उधेड़बुन में एक रात देर तक कुछ संदर्भ सामग्री खंगालता रहा। ख्याल आया कि क्या फिल्मों का जिक्र करते हुए अपनी बात रखी जा सकती है। इस विचार पर गहराई से सोचते हुए मेरा ध्यान अलग–अलग दौर की कुछ फिल्मों पर गया। उनके बारे में सोचा, नेट पर कुछ सामग्री देखी। अतंतः इन्हीं में से कुछ उदाहरण लेकर सत्र योजना तैयार की। अगले दिन अपनी बात को नए अंदाज में सदन के समक्ष प्रस्तुत किया। इस दौरान कई महत्त्वपूर्ण सवालों पर भी चर्चा होती रही।

सब कुछ इस तरह हुआ

एन.सी.एफ. शिक्षक की भूमिका में एक बड़े बदलाव की पेशकश करता है। सीखने की प्रक्रियाओं को आनंददायक तथा अनुभव आधारित बनाए जाने की वकालत करता है। एक नए तरह के शिक्षक की परिकल्पना हमारे सामने प्रस्तुत

करता है। ''ये नया शिक्षक कैसा होना चाहिए ?'' मैं आपको हिंदी की कुछ चर्चित फिल्मों की याद दिलाना चाहूंगा। ये फिल्में बदलते दौर के साथ बदलते हुए शिक्षक की छवि को जीवंतता के साथ हमारे सामने पेश करती हैं।

श्वेत–श्याम फिल्मों के दौर, यानी कि सन् 1954 की एक फिल्म है 'जागृति'। सन् 1972 में बनी प्राण, संजीव कुमार, जया भादुड़ी और जितेंद्र की फिल्म है 'परिचय'। फिल्म में जितेंद्र तांगे पर बैठकर गीत गाते हैं–मुसाफिर हूं यारो, न घर है न ठिकाना...। एक और फिल्म है, 2007 की 'तारे जमीं पर', जिसमें आमिर खान और एक छोटे बच्चे दर्शिल सफारी ने अभिनय किया है।

जरा याद कीजिए कि तीनों फिल्मों के मुख्य पात्र काम क्या करते हैं? तीनों शिक्षक हैं।

फिल्म जागृति में अजय के ताऊजी उसकी शरारतों से तंग आकर उसे बोर्डिंग स्कूल भेज देते हैं। वहां भी वह तथा उसके साथी अपनी शरारतें जारी रखते हैं। हॉस्टल के अधीक्षक शेखर बाबू प्यार से उनके करीब जाते हैं और कुछ हटकर शिक्षण का प्रयास करते हैं। यह दौर आदर्शवाद का दौर था। कुछ साल पहले ही भारत को बरतानिया हुकूमत से आजादी मिली थी। गांधी तथा नेहरू के आदर्श समाज के जनमानस में छाए हुए थे। फिल्म में शिक्षक भी उन्हीं आदर्शों की मिसाल दिखते थे। खादी का कुरता, सफेद धोती, चश्मा, कंधे पर झोला.....हमेशा धीर गंभीर बने रहकर बच्चों को भी वैसे ही संस्कार देने थे। फिल्म में शिक्षक बने अभि भट्टाचार्य भी ऐसे ही दिखते हैं। वे बच्चों के बीच गाते हैं–'हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के, इस देश को रखना मेरे बच्चो संभाल के'। यह गीत आज भी लोकप्रिय है। इस गीत की कुछ पंक्तियों को देखिए–

तुम ही भविष्य हो मेरे भारत विशाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चो संभाल के
आराम की तुम भूल भुलैया में न भूलो
सपनों के हिंडोलों में मगन हो के न झूलो
अब वक्त आ गया है मेरे हंसते हुए फूलो
उठो छलांग मार के आकाश को छू लो
तुम गाड़ दो गगन पे तिरंगा उछाल के

गीत के बोल पर गौर करें तो हम पाएंगे कि बच्चों को भावी जिम्मेदारियों के लिए तैयार करने के प्रयास में

देशभक्ति, ईमानदारी आदि संस्कारों को अर्जित करने की बात की जा रही है। फिल्म में देखेंगे तो पाएंगे कि शिक्षक बच्चों के बीच खड़े हैं, उछलना, कूदना उनके स्वभाव का हिस्सा नहीं है। बच्चों के साथ ज्यादा इधर–उधर की बातें नहीं करते हैं, केवल ईमानदारी से अपना काम करते हैं। विद्यार्थियों के सामने सादगी, ईमानदारी, देशभक्ति और गंभीरता के जीते–जागते प्रतीक हैं वे।

अब नजर डालते हैं अठारह साल बाद आई फिल्म 'परिचय' के शिक्षक पर। गुलजार द्वारा निर्देशित फिल्म में राय साहब, यानी के प्राण के पांच पौत्र–पौत्रियां हैं। इनमें से छोटे बच्चों को पढ़ाने का जिम्मा रोजगार की तलाश में भटकते एक युवक रवि यानी जीतेंद्र को सौंपा जाता है। यह वह दौर है जब भारत अपनी परंपराओं और विरासत के साथ ही आधुनिकता की तरफ कदम बढ़ा रहा है। इस दौर का शिक्षक पैंट, कमीज भी पहनने लगा है। परंतु वे कपड़े अभी भी सादगी वाले ही हैं। शिक्षक बच्चों को होमवर्क देता है। अपने अच्छे बर्ताव से बच्चों के स्वभाव में व्यावहारिक परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। बच्चों के साथ अपनी कक्षाओं के दौरान संजीदा रहता है। हंसी–मजाक नहीं करता, गंभीर शिक्षक की तरह पढ़ाता रहता है। ऐसा नहीं है कि उसे नाच–गाने से परहेज है। लेकिन अपने समय की सामाजिक सोच, मान्यताओं तथा जनमानस के पटल पर अंकित शिक्षक की छवि का ख्याल रखते हुए वह ऐसा है।

लेकिन जब वह बच्चों के साथ पिकनिक मनाने पहाड़, बगीचे में किसी ऐसी जगह पर जाता है जहां उसके और इन बच्चों के अलावा अन्य कोई न हो तो वह भी बच्चों के साथ नाच गाकर उनमें घुल मिल जाता है। याद कीजिए गीत *...सारे के सारे गामा को लेकर गाते चले .....।* शिक्षक अपने बच्चों के साथ खुलकर गीत गा रहा है,उनके साथ उनके ही जैसा बनकर। लेकिन समाज के सामने अभी भी उसे इन सब बातों से दूर रहना है।

अब आते हैं आज के दौर में। सन् 2007 में बनी फिल्म 'तारे जमीं पर' जिसका निर्देशन किया है आमिर खान ने। इसमें शिक्षक का किरदार भी आमिर ने ही निभाया है। कहानी ईशान नाम के बालक को लेकर बुनी गई है। एक बालक पर स्कूल के माहौल, शिक्षकों की असंवेदनशीलता, सहपाठियों का व्यवहार तथा उसके स्वयं के अभिभावकों की अपेक्षाओं का बोझ बखूबी फिल्माया गया है। एक खास बात यह भी है कि फिल्म का मुख्य पात्र यह बालक ही है। 2008 के श्रेष्ठ अभिनेता का राष्ट्रीय पुरस्कार भी ईशान की भूमिका में रहे दर्शिल सफारी को ही मिला था।

याद कीजिए शिक्षक बने आमिर खान फिल्म में पहली बार कब नजर आते हैं और किस वेश में? तकरीबन आधी फिल्म बीत जाने के बाद, एक रंग बिरंगे जोकर के वेश में, उछलकूद करते हुए वे बच्चों के बीच कक्षा में आते हैं और जमकर धूम मचाते हुए गीत गाते हैं *–बम बम बोले, मस्ती में डोले.....।*

अजीब–से रंगीन कपड़े, अजीब–सी नाक, सिर पर टोपी और मुंह को रंगे हुए जोकर बना यह शिक्षक जिस तरह बच्चों के साथ नाच गा रहा है, आज से कुछ साल पहले तक इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। ये क्या हुआ ? कैसे आया ये बदलाव ? सादगी से रहने वाला शिक्षक आज हमें नाचते–गाते हुए कैसे दिखने लगा है?

यह परिवर्तन यूं ही नहीं आया है। लेखक अमोल गुप्ते ने शिक्षा के परिदृश्य में हो रहे बदलावों और नवाचारों को ध्यान में रखकर ही इस कहानी को लिखा है। पात्रों का चरित्र चित्रण किया है। फिल्म की कहानी के केंद्र में शिक्षक नहीं बल्कि बालक है। उसकी परेशानियों,उसकी रुचियों तथा उसके अनुभवों का ख्याल रखते हुए ही शिक्षक विद्यालय प्रबंधन तथा अभिभावकों को उनकी जिम्मेदारियों से अवगत करता है। यह फिल्म हमें बताती है कि हम जिन छोटे बच्चों के बीच काम करते हैं वे रंगों से प्यार करते हैं, गीत–संगीत तथा किस्से, कहानियां उनको लुभाते हैं। ऐसे में वही शिक्षक उनके दिल के ज्यादा करीब जा सकेगा जो उनके जैसा ही बच्चा बन सके और उनके साथ ही उनके रंग में रंगकर बचपन को महसूस कर सके।

फिल्म में गीतकार प्रसून जोशी का लिखा गीत बहुत बेहतर ढंग से 'बच्चों' और 'बचपन' को एक अलग अंदाज में हमारे सामने प्रस्तुत करता है तथा उनके प्रति हमें और भी संवेदनशील बनने का आग्रह करता है।

खो न जाएं ये तारे जमीन पर
ये तो हैं सर्दी में धूप की किरण
जैसे रंगों भरी पिचकारी
जैसे तितलियां फूल की क्यारी.
जैसे कांच में चूड़ी के टुकड़े
जैसे खुले खुले फूलों के मुखड़े
ये तो झोंके हैं पवन के
घुंघरू हैं जीवन के.....

तो हमने तीन अलग दौर के शिक्षकों तथा बच्चों से उनके रिश्तों की बात की। तीनों शिक्षकों के चरित्र का स्मरण एक बार फिर कीजिए। उनके

कपड़ों, व्यवहार और चलने, बोलने के तरीकों पर गौर फरमाइए। बदलते दौर के साथ न सिर्फ शिक्षक के कपड़े सादगी से रंगीनी की तरफ जाते दिख रहे हैं बल्कि उसके चलने, बोलने और हाव–भावों में आए परिवर्तनों को भी हम महसूस कर सकते हैं। आप पाएंगे कि आज के दौर का शिक्षक हमें बच्चों के ज्यादा करीब दिख रहा है। वह पढ़ाने के अलावा बच्चे की परेशानियों को भी ज्यादा समझ पा रहा है। वह जानता है कि बच्चे क्या चाहते हैं। बच्चों से दोस्ती करने के लिए वह जोकर भी बन जाता है। मां–बाप को भी वह समझाता है कि अपने बच्चे की रुचि का ख्याल रखें, अपनी अपेक्षाओं को बच्चों पर थोपना गलत है।

साथियो, एन.सी.एफ. भी हमसे ऐसे ही बाल केंद्रित शिक्षण की बात करता है। ऐसा शिक्षक जिसके केंद्र में बच्चे हैं। तमाम किस्म की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं वाले बच्चे। सारी गतिविधियां तथा तौर तरीके इन बच्चों के अनुकूल होने चाहिए। उसके अनुभवों तथा स्तर का ख्याल रखते हुए शिक्षण प्रक्रिया की जानी चाहिए। 'ज्ञान' अब दी जाने वाली चीज नहीं है बल्कि प्रत्येक बच्चे में इसे 'स्वयं निर्माण करने' की क्षमता होती है। हमें उसके 'ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं' में सहयोगी की भांति काम करना है।

और सत्र के बाद

यह सत्र बहुत जानदार रहा था। सभी ने न सिर्फ बहुत ध्यान से सुना, बल्कि अपनी अपनी याददाश्त का सहारा लेकर तीनों ही फिल्मों के अन्य पहलुओं पर भी बाकी लोगों का ध्यान आकर्षित किया।

एक शिक्षक बोले,'' तो क्या अब हम शिक्षकों को जोकर भी बनना होगा?''

मैने बहुत ही धैर्य के साथ उन्हें जवाब दिया, ''जी हां, हम सभी लोग जो छोटे बच्चों के शिक्षण कार्य में लगे हैं,उन्हें एक जोकर की तरह ही बच्चों का दिल जीतना सीखना होगा। अपने काम को आनंददायी बनाकर पेश करना होगा ताकि बच्चे कक्षा में न सिर्फ आना पसंद करें, बल्कि वहां हो रही गतिविधियों में सक्रिय भागीदार भी बन सकें।

चाय के समय एक अन्य शिक्षक मेरे पास आए और कहने लगे, ''सर जी आपने सही कहा। मैं अपने बच्चों को बहुत मेहनत से पढ़ाता रहा हूं, लेकिन वे मेरी बातों में रुचि ही नहीं लेते। मेरी सारी मेहनत बेकार जा रही है। मैं स्वयं को बदलने का प्रयास करूंगा। बच्चों के और भी करीब जाने का प्रयास करूंगा।''

उनकी बातों से मुझे थोड़ा संतोष मिला। मुझे लगा कि जो बातें मैं कहना चाहता था, शायद कुछ हद तक स्पष्ट कर सका हूं। इसका असर ये रहा कि 'हाव–भाव से कविता शिक्षण' के लिए किए जा रहे अगले सत्र में सभी शिक्षकों ने बच्चों की तरह ही अभिनय करते हुए ''हरा समंदर गोपी चंदर, बोल मेरी मछली कितना पानी'' कविता को गाया। खूब आनंद आया।

मोहम्मद उमर : एकलव्य, म.प्र. में काम करने के बाद, लगभग दो साल आईसीआईसीआई के सेंटर फॉर एजूकेशन, उदयपुर में कार्य किया। आजकल अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन,जयपुर, राजस्थान में गणित विषय के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं। अपने शैक्षणिक अनुभवों पर वे निरंतर पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं।

बच्चे का परिवेश

✍ शगुफ्ता अंजुम

कहते हैं बच्चा गर्भ से ही सीखना प्रारंभ कर देता है। मां के आसपास की आवाजों, संवादों को सुनता है, पहचानता है। मां की मनःस्थिति उसके विकास पर प्रभाव डालती है। शायद इसीलिए गर्भवती को हमेशा अच्छे विचार, अच्छा वातावरण एवं पोषण देने की बात कही जाती है। जन्म के पश्चात बच्चा मां की गंध एवं स्पर्श पहचानता है। जन्म के कुछ दिनों बाद ही उसकी आवाज पर प्रतिक्रिया करना प्रारंभ कर देता है। मां की गोद उसका प्रथम विद्यालय है। बच्चा मां और परिवार के साथ, विद्यालय आने से पूर्व ही, बिना किसी नियम एवं श्यामपट्ट के वह भाषा सीख जाता है जो उसके आसपास बोली जाती है

बच्चे को जितना अपने परिवेश से अंतःक्रिया करने का मौका मिलता है उसका ज्ञान एवं जिज्ञासा दोनों उतने ही बढ़ते जाते हैं। बच्चा सवाल करता है। कुछ जवाब उसे मिलते हैं, कुछ के जवाब उसे समझ नहीं आते, पर इससे उसकी कल्पनाशक्ति को बल मिलता है। अवलोकन, जिज्ञासा, कल्पनाशीलता का विकास ही तो वे सब बातें हैं जिनसे बच्चों की अभिव्यक्ति विकसित होती है, प्रभावित होती है। सूक्ष्म अवलोकन के मौके तो बच्चों को पर्यावरण में रहकर ही मिल सकते हैं। स्वयं देखकर, छूकर वे महसूस करते हैं एवं अधिक जानने को आतुर होते हैं।

अवलोकन एवं कल्पनाशक्ति से बच्चे कहानी सुनाकर या कोई बात कहकर अपने द्वारा देखी गई दुनिया से एक नई दुनिया की कल्पना करते हैं। यहीं से प्रारंभ होती है उनकी अभिव्यक्ति की यात्रा। बच्चों के पास असीम बातें एवं विचार होते हैं, परंतु वार्तालाप की कमी एवं अभिव्यक्ति के मौके न मिलने से उनकी रचनात्मकता अभिव्यक्त नहीं हो पाती है।

बच्चों को किसी विषय का ज्ञान देने से पूर्व उनसे बातचीत द्वारा उनके पूर्वानुभवों से उस ज्ञान को जोड़ा जाता है, उनकी समझ की परख की जाती है तभी वे नए विषय या बात में अपने आपको रुचिपूर्वक जोड़ पाते हैं। भ्रमण करते समय, कक्षा कक्ष के बाहर भी अवलोकन के पश्चात बच्चों से उस पर बातचीत की जाए तो वे अपने अनुभवों एवं दृष्टांतों को अच्छी तरह सुनाते हैं। अवलोकन के माध्यम से उनके ज्ञान में वृद्धि होती है। प्रत्येक विषय को सीखने में बच्चों की समझ एवं अभिव्यक्ति मायने रखती है।

मैं ऐसे वातावरण में रही जहां हर समय सीखने, समझने एवं अभिव्यक्त करने के मौके मिलते थे। बच्चों को पढ़ाते–सिखाते समय मैं उन्हीं बातों को ध्यान में रखती हूं जो सीखने की प्रक्रिया को रोचक बनाता है। मैंने प्राथमिक विद्यालय में सभी विषय पढ़ाए हैं एवं लगभग वे सभी गतिविधियां बच्चों के साथ की हैं जो उनके सर्वांगीण विकास में सहायक हैं। मेरे लिए ये कहना आसान है कि प्रत्येक बच्चा प्रतिभाशाली होता है। उसकी प्रतिभा को पहचानने एवं निखारने का मौका मिलना चाहिए।

विद्यालयों में इसके लिए हमें विभिन्न अवसर तलाशने होते हैं। भ्रमण, चित्रकला, नृत्य, कविता, संगीत, खेलकूद, कहानियां, प्रतियोगिताएं आदि कई मौके होते हैं बच्चों को देखने, समझने एवं जानने के लिए। यहां तक कि भोजन एवं विश्राम के समय भी एवं आपस में बातचीत के समय भी बच्चों की रुचि को पहचानकर उनके मन को पढ़कर उनकी क्षमता को पहचाना जा सकता है।

कभी बच्चों को जिम्मेदारी सौंपकर, कभी सामूहिक कार्य करवाकर उनकी रचनात्मकता एवं अभिव्यक्ति को देखा

आपने

कहा है...

''खोजें और जानें'' मेरे लिए ''खोजा'' से ''जाना'' अधिक है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से अभिभूत, मैं हैरान थी कि लोग लिखते कैसे हैं? इस बार का अंक ''कुछ पढ़कर लिखकर सो'' मेरे इस कौतुहल के जवाब के साथ ही मुझे लिखने हेतु प्रेरित करने वाला था। इसलिए पत्रिका को कोटिशः धन्यवाद।

देवयानी का लेख ''अंग्रेजी से अनबन'' बहुत अच्छा लगा। अंग्रेजी भाषा सीखने की बाध्यता की उलझन और उससे जूझने से लेकर अंग्रेजी से रिश्ता बनाने की प्रक्रिया शिक्षकों हेतु प्रेरणादायी लगी।

दिनेश कर्नाटक की कहानी ''मैकाले का जिन्न'' ने स्कूली शिक्षा व्यवस्था को बहुत सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस अंक में गणित, अंग्रेजी, तथा सृजनात्मकता जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर व्यावहारिक गतिविधियां तथा कक्षा में प्रयोग व नई गतिविधियों की रचना हेतु सहयोगी सामग्री प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास है।

● **कुमुद पुरोहित,** प्राध्यापक,विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, रामगिरि, उदयपुर।

''खोजें और जानें'' का अंक 5 प्राप्त हुआ। शिक्षकों द्वारा अपने शिक्षण के दौरान हुए व्यक्तिगत अनुभवों के लेख सराहनीय हैं। बच्चों के मनोविज्ञान को समझने में हमें मदद मिलती है।

दिनश कर्नाटक द्वारा लिखित कहानी ''मैकाले का जिन्न'' दिलोदिमाग पर गहरा असर छोड़ गई। आज सरकार बच्चों की शिक्षा के लिए इतना बजट बना रही है, पोषण के लिए मिड डे मील की योजना है। इन सबके बावजूद बच्चों को उचित शिक्षा नहीं मिल पा रही है। इसके लिए जिम्मेदार कौन है, विचारणीय है।

देवयानी भारद्वाज का लेख ''अंग्रेजी से अनबन'' पढ़ा। हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले अधिकतर बच्चे इस पीड़ा से गुजरते हैं। कहा जाता है कि हिंदी हमारी मातृभाषा है, हमें हिंदी में सब काम करना चाहिए। लेकिन बड़े होने पर अच्छी व फर्राटेदार अंग्रेजी न आने पर तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। यह भी एक विडम्बना ही है।

● **शाल्वी कटोच,** हाउस नं. 130 WW, 8 ग्रीन पीस कॉलोनी, धौलपुर, कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) 175101

जा सकता है। समूह में प्रदर्शन, जिम्मेदारी निभाना, कुछ खेल एवं आर्ट एंड क्राट की गतिविधियां, भ्रमण, उत्सव, समारोह, खेलकूद आदि कई मौके होते हैं जब बच्चे सीखते, समझते एवं अभिव्यक्त करते हैं।

यहीं से प्रारंभ होता है, इन नन्हें रचनाकारों की अभिव्यक्ति के विकास का सफर–

- छोटे–छोटे हाथों से रेत में घर, सड़क, महल, लड्डू आदि बनाकर दिखाते हैं तो वे किसी सृजनकार से कम नहीं होते हैं।
- जब कोई बच्चा पहला चित्र बनाकर उसमें अपनी पसंद के रंगों को भरता है तो उसकी खुशी देखने लायक होती है।
- कई बार अक्षर एवं अंक लिखते समय भी ढेरों बातें होती हैं। 'ज' से जहाज। हम पानी में गए तो वहां इतना बड़ा जहाज था। हम उस पर गए। मुझे डर लगा। मैं तो छोटा जहाज बनाऊंगा।

बच्चों को एक दिशा, एक अवसर चाहिए। अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन करने का, बढ़ने का। हमें उन्हें यह मौके अवश्य देने चाहिए।

शगुफ्ता अंजुम : प्रभारी, विद्या भवन नर्सरी विद्यालय,उदयपुर।

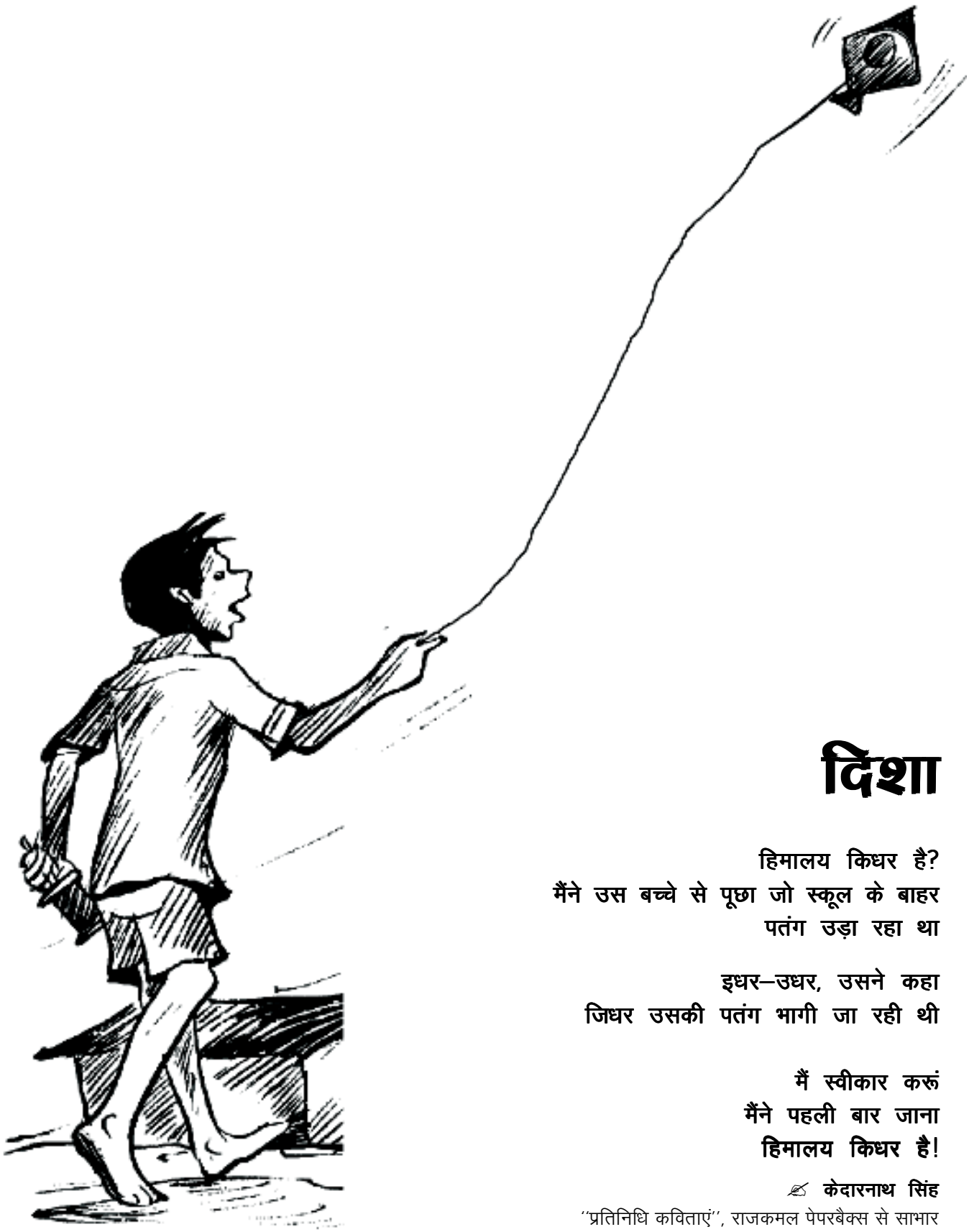

दिशा

हिमालय किधर है?
मैंने उस बच्चे से पूछा जो स्कूल के बाहर
पतंग उड़ा रहा था

इधर–उधर, उसने कहा
जिधर उसकी पतंग भागी जा रही थी

मैं स्वीकार करूं
मैंने पहली बार जाना
हिमालय किधर है!

✍ **केदारनाथ सिंह**

''प्रतिनिधि कविताएं'', राजकमल पेपरबैक्स से साभार

भाषा शिक्षण और पुस्तकालय

✍ रेखा चमोली

भाषा शिक्षण का उपयोग सिर्फ पढ़ने–लिखने तक ही सीमित नहीं है। पढ़कर समझना, विचारना, योजना बनाना, कल्पना करना, अपने मन की बात साझा करना, तर्क देना, चर्चा–परिचर्चा में प्रतिभाग करना आदि बहुत–सी अन्य दक्षताएं भी भाषा शिक्षण का ही अंग होती हैं। इन पर सामान्य स्थिति में हम अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करते। सही शब्द और भाव संप्रेषण के अभाव में हम अपनी बात स्पष्टता व दृढ़ता से दूसरों तक नहीं पहुंचा पाते हैं। हम अपने अनुभवों के आधार पर चीजों को देखते–परखते व संप्रेषित करते हैं। इसीलिए यह बहुत जरूरी है कि हम किसी स्थिति या विषय पर अधिक से अधिक अनुभव ग्रहण करें और विभिन्न नजरियों, कोणों से देखते हुए उसके बारे में अपनी समझ बनाएं।

भाषा के स्तर पर यह कार्य तमाम विधाओं का अध्ययन करके किया जा सकता है। इसको हम दो भागों में बांटकर देख सकते हैं–

- भाषा की विभिन्न विधाओं पर प्रकाशित किताबें पढ़कर व उन पर विस्तार से बातचीत कर।
- स्वयं के अनुभवों को लिखकर, बोलकर।

प्राथमिक स्तर पर मैंने पाया कि ध्यान न दिलाने पर या किसी बात को व्यक्त करने का अवसर न मिलने पर, वह बात अपना असर कम कर देती है या हमारी स्मृति से हट जाती है। वह कभी हमारी समझ व विचार का हिस्सा नहीं बन पाती। जो फर्क देखने और अवलोकन करने में है, वही फर्क सिर्फ पढ़ने, पढ़कर लिखने और पढ़कर समझने व विचार करने में है।

पढ़ें तो बढ़ें

सही अवलोकन व समझ का प्रभाव हमारी संवेदनशीलता, तार्किकता व अभिव्यक्ति पर पड़ता है। उपर्युक्त घटक हमारे व्यक्तित्व को बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मैंने अपने शिक्षण में शुरू से ही कहानी–कविता का उपयोग किया और इसके असर को जाना समझा। बच्चों को अपने स्तर पर उपलब्ध बाल पत्रिकाएं भी पढ़वाईं। अपनी छोटी सी लाईब्रेरी भी बनाई। पर इस काम में सोने पे सुहागा हुआ जब स्कूल पुस्तकालय में 'रूम टू रीड' की करीब एक हजार किताबें आईं। साथ ही कुछ नई किताबें विभाग की ओर से भी आईं। कुल मिलाकर लगभग बारह सौ किताबें हमारी लाईब्रेरी में हो गईं। इतनी सारी किताबें उपलब्ध होने से पूर्व में चल रहे काम को और गति मिली। बच्चों के साथ इस पुस्तकालय की शुरुआत मैंने उन्हें रोज नई कविताएं व कहानियां सुनाकर की। नए–नए चित्रों पर बातचीत कर कक्षा में चर्चा–परिचर्चा करवाई। बच्चों के साथ स्वयं बनाई कहानी–कविता पर कक्षा 3, 4, 5 के साथ पहले से ही मैं काम कर रही थी, जिसके परिणामस्वरूप ही अनेक बच्चों की कविताएं विभिन पत्रिकाओं जैसे चकमक, बालप्रहरी, आलोकपथ में भी छप रही हैं।

अवसर मिले तो

जब प्रधानाध्यापिका महोदया दस दिवसीय सेवारत शिक्षक

प्रशिक्षण में प्रतिभाग करने बी.आर.सी. मनेरी गईं तो मेरे ऊपर पूरे विद्यालय को अकेले सुचारू रूप से चलाने की जिम्मेदारी आई। मैंने कुछ ऐसा करने की योजना बनाई जिससे कि बच्चों की शैक्षिक दक्षता में गुणात्मक वृद्धि हो और साथ ही कुछ सृजनात्मक–रचनात्मक कार्य हो। साथ ही विद्यालय की संपूर्ण गतिविधियां बिना अतिरिक्त बोझ के हो सकें। मैंने इसके लिए कक्षा चार–पांच के साथ दस दिवसीय कार्ययोजना बनाई। जिसमें चित्र पठन, चित्र लेखन, शब्दों से कहानी बनाना, मनचाहे विषय पर कविता लिखना, दिए गए विषय पर अपने अनुभव लिखना, वार्तालाप, दैनिक जीवन अनुभव पर आधारित साक्षात्कार, लिखी गई कविता–कहानी पर चित्र बनाना, अपनी बात समूह में साझा करना व मिलजुल कर समूहों में अपनी–अपनी बाल पत्रिकाएं बनाने को शामिल किया।

इन दस दिनों में हमने खूब काम किया। हमें पता भी नहीं चला कि हम कक्षा में काम कर रहे हैं। बच्चों को खाना खाने के लिए भी बार–बार बोलना पड़ता। हर बच्चा अपने समूह में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराना चाहता था। हमारी इन गतिविधियों में प्रत्येक बच्चे के लिए जगह थी। हर बच्चे की रचना को बराबर प्रोत्साहन व स्थान था। सबको अपनी बात साझा करने व अपना काम समूहों में दिखाने के लिए पर्याप्त समय व मौके दिए गए। इसलिए इसमें पारंपरिक कक्षाओं की तरह न तो कोई कम था न कोई ज्यादा। न ही छोटी–छोटी मात्राओं वाली गलतियों के लिए डांट थी। इतने दिन मैंने सिर्फ चार बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा : समझ, विचार, कल्पना और खुद को व्यक्त कर पाना।

इन दस दिनों में बच्चों के साथ मेरा संबंध और भी आत्मीय और सीखने–सिखाने वाला रहा। बच्चों को खूब मजा आया और तमाम शैक्षिक दक्षताएं भी निखरीं। इन तमाम गतिविधियों ने किताबों के प्रति बच्चों की रुचि बढ़ाई व उनमें किताबों के प्रति अपनापन व सुरक्षा का भाव भी जगा।

पुस्तकालय का उपयोग

इसके बाद मैंने बच्चों को स्वयं पुस्तकालय का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया। पुस्तकालय प्रयोग के नियम व समय सारणी तय की। पुस्तकालय से संबंधित बहुत सी गतिविधियां तय कीं और इसमें बच्चों की सहमति व साझेदारी तय की। जैसे–पुस्तकों का लेन–देन, रखरखाव, चार्ट लगाना, बातचीत, चर्चाएं करना, अपनी पढ़ी किताब के बारे में सुबह की सभा में सबको बताना आदि। बालसखा कक्ष (यानी पुस्तकालय कक्ष) हमारा प्रिय कक्ष बन गया।

इसी क्रम में लगभग दो वर्ष तक पुस्तकालय में काम करते हुए मैंने सोचा कि क्यों न अब पुस्तकालय की पुस्तकों का उपयोग भाषा शिक्षण के दौरान पाठों की समझ बढ़ाने व पाठ्यक्रम में निहित दक्षताओं को पाने में किया जाए। पाठ्यपुस्तक व अन्य पुस्तकों की साझोदारी से विषय पर व्यापक समझ बनाई जाए। विषयों की दीवार हटाई जाए। बच्चों में किसी खास विषय के बारे में और अधिक जानने की इच्छा जगाई जाए। किसी खास सम्बोध को मानवीय, सामाजिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक व कल्पना के स्तरों पर देखने, समझने का कौशल बच्चों में लाया जाए।

इस काम को सावधानी से करना था ताकि बच्चों को किसी तरह का अतिरिक्त बोझ न लगे। किताबों के प्रति उनकी रोचकता कम न हो, कहीं ऐसा न हो कि उनकी रुचि पाठ्यपुस्तक पढ़ने में कम हो जाए।

अभी मैंने जिन बच्चों के साथ यह काम करना शुरू

किया है, वे कक्षा 4 व 5 के बच्चे हैं। ये बच्चे पिछले दो सालों से पुस्तकालय का उपयोग कर रहे हैं। हमारी आपसी समझदारी, आत्मीयता व प्रेम ने ऐसा माहौल बनाया है कि हम एक–दूसरे पर विश्वास करते हैं। कुल मिलाकर माहौल नई पाठ्य योजना हेतु तैयार है।

मैं चाहती हूं...

मैं अपने भाषा शिक्षण से यह चाहती हूं कि बच्चे एक विषय को विभिन्न पहलुओं से देखना सीखें, विभिन्न पहलुओं पर विचार करें, बात को समझने के लिए प्रश्न करें, खुद अपने जवाब तलाशें, चीजों को जोड़कर और अलग–अलग करके देखें, परखें।

मेरा विश्वास है कि ऐसा करने से उनमें विचार करने की क्षमता बढ़ेगी। मेरा उद्देश्य उनका मूल्यांकन करना नहीं बल्कि किसी कहानी या कविता का एक सार्थक व गहरा असर डालना है जो उम्र के साथ उनके जीवन की विभिन्न गतिविधियों को प्रभावित करेगा।

मैंने पुस्तकालय से ऐसी पुस्तकें छांटनी शुरू कीं जिनका उपयोग मैं कक्षा चार व पांच की भाषा पुस्तिका के साथ करना चाहती थी। मनचाही किताबें मिलने पर मैंने अपना काम शुरू किया। शुरुआत में मैंने प्रक्रिया के दस्तावेजीकरण की ओर खास ध्यान नहीं दिया। बाद में लगा कि ये सारी प्रक्रिया मेरे शिक्षण कार्य में बहुत मददगार होने वाली है। तो कक्षा के अवलोकन व बच्चों के कुछ लिखित कामों को अपनी डायरी में नोट किया। जिनमें से कुछ यहां साझा कर रही हूं।

व्हेल से मछलियों तक

कक्षा–4, पाठ–5 उत्तराखंड की कक्षा चार की हिंदी की पाठ्यपुस्तक का पाठ पांच है – एक हजार बाल्टी पानी। यह कहानी है एक व्हेल मछली और एक छोटे लड़के युकियो की। युकियो का गांव समंदर किनारे है और वहां के लोग व्हेल का शिकार कर अपना जीवन चलाते हैं। कहानी तब महत्त्वपूर्ण बन जाती है जब ज्वार के साथ आई एक व्हेल की जान बचाने के लिए पूरा गांव युकियो की मदद करता है। अंततः भाटे के साथ आई लहरें व्हेल को वापस समुद्र में ले जाती हैं।

मैंने इस पाठ पर काम करने के बाद पुस्तकालय से 4 और किताबें छांटी 1. तीन मछलियां 2. व्हेल 3. मछलियां पानी में तैरती हैं और 4. मच्छो मछली।

व्हेल किताब में हमने खूब सारे चित्रों के साथ व्हेल के बारे में जाना। बच्चों को व्हेल के रहन–सहन, खान–पान व विशेषताओं के बारे में पता चला। यह भी पता चला कि व्हेल दुनिया का सबसे बड़ा जीव है। एक फोटो में व्हेल के साथ एक गोताखोर का भी चित्र था। बच्चे उस चित्र को देखकर अनुमान लगाने लग गए कि युकियो ने इतनी बड़ी व्हेल पर कैसे पानी उड़ेला होगा। उन्होंने अपने गांव के गाड़ में देखी मछली के आकार की तुलना की और अपनी आंखें खूब फैलाकर समुद्र की विशालता का भी अनुमान लगाया। वे समुद्र की विशालता की तुलना पर्वत और आसमान से करने लगे। उन्होंने कहा कि अगर व्हेल उनके गांव में आती तो उसके लिए कितनी जगह चाहिए होती। बच्चों ने अनुमान लगाया कि गांव के सारे सेरे (खेत) में तो सिर्फ एक ही व्हेल रह पाती। शायद इसीलिए व्हेल मछली समुद्र में रहती है।

फिर हमने इसी तरह की चित्रों वाली एक और किताब पढ़ी– मछलियां पानी में तैरती हैं। इस किताब में विभिन्न मछलियों के चित्रों के साथ मछलियों के रहन–सहन, प्रकार, आदतों आदि के बारे में बताया गया है। किताबें देखने–पढ़ने के बाद मैंने बच्चों से पूछा, क्या तुम मुझे इस किताब के आधार पर मछलियों के बारे में कुछ बातें बता

सकते हो। सबके हाथ खड़े हो गए।

प्रीति : मछलियां गिल्स से सांस लेती हैं।

मनीषा : व्हेल मछली बहुत देर तक पानी से बाहर रहकर सांस ले सकती हैं। (व्हेल वाली किताब से)

विशाल : कुछ मछलियां गर्म पानी में भी रहती हैं।

अरविन्द : अलग–अलग पानी में अलग–अलग मछलियां रहती हैं।

मनोज : बहुत सारी मछलियां अजीब दिखती हैं। मछली जैसी नहीं दिखतीं। (मछली के प्रचलित चित्र से अलग)

शुभम : गुफाओं में रहने वाली मछलियां अन्धी होती हैं।

शुभम का अवलोकन व कल्पना दृष्टि सबसे अलग है। वो पढ़ने–लिखने में बाकी बच्चों से पीछे है पर हमेशा उन बातों पर ध्यान दिलाता है जिन पर बाकी बच्चे ध्यान नहीं देते।

ऐसा क्यों होता होगा शुभम? क्योंकि उन्हें आंखों की जरूरत ही नहीं होती होगी। अंधेरी गुफा में वे क्या देखेंगी? शुभम ने जबाव दिया।

मच्छो मछली व *तीन मछलियां* कहानी की किताब हैं। मैंने *मच्छो मछली* की कहानी बच्चों को सुनाई। फिर पढ़कर दुबारा सुनाई। फिर बच्चों ने उसे समूह में पढ़ा। लिखित कार्य हेतु मैंने *तीन मछलियां* कहानी चुनी। यह कहानी झील में रहने वाली तीन मछलियों की कहानी है। जिन्हें एक दिन पता चलता है कि कल मछुआरे झील में जाल डालने वाले हैं। जाल से बचने के प्रयास में छोटी मछली को चोट लग जाती है, बड़ी मछली जाल में फंस जाती है, जबकि नन्हीं मछली पहले दिन ही झील के दूसरे किनारे पर चली जाती है। कहानी में नन्हीं मछली की जगह बच्चे अपने आपको महसूस कर पाते हैं।

निजी जिंदगी में बच्चों के अस्तित्व को खास स्थान नहीं दिया जाता। उनकी बातों को अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। ऐसे में कहानी का नन्हा पात्र जब अपनी समझदारी दिखाकर बड़ों पर भारी पड़ जाता है तो बच्चे बहुत खुश होते हैं। वे उसकी जीत में अपनी जीत महसूस करते हैं। खुद को महत्त्वपूर्ण महसूस करते हैं। इस किताब की हमारे पास तीन प्रतियां हैं। इसकी खासियत यह है कि इसमें पैच वर्क किया हुआ है। जिसे स्पर्श कर बच्चे मछली की त्वचा, पानी व जाल आदि को महसूस कर सकते हैं। इससे कहानी की रोचकता बढ़ जाती है। वैसे भी ज्यादातर बच्चों के पास मछली को लेकर अपने पर्याप्त अनुभव हैं। कहानी सुनाने, पढ़ने व पर्याप्त बातचीत के बाद मैंने बच्चों से कहा कि वे मुझसे कहानी पर आधारित प्रश्न पूछें। मैं उनका जवाब देने की कोशिश करुंगी। अगर मैं किसी प्रश्न का जवाब नहीं दे पाई तो हम मिलकर उस प्रश्न का जवाब ढूंढ़ने की कोशिश करेंगे। बच्चों ने ढेरों सवाल पूछे। मैंने

उनसे कहा– क्या वे इन सवालों को लिखकर पूछेंगे। हम कक्षा में अक्सर सवाल बनाने वाली गतिविधि करते रहते हैं। बच्चे सवाल बनाने लगे। उन्होंने हर तरह के सवाल बनाए। औसतन हर बच्चे ने 25–35 सवाल बनाए। प्रियंका ने 41 सवाल बनाए। इस बीच मैंने भी उनके लिए 6 सवाल बनाए। बच्चों के बनाए सवालों में स्मृति आधारित सवाल ज्यादा थे, पर समझ व अनुप्रयोगी सवालों की भी कमी नहीं थी। कुछ सवाल कौशलात्मक भी थे।

जैसे–मछुआरों की बात किसने सुनी? कौन सी मछली तेजी से तैरती थी? मछलियों को कैसे पता चला कि कल मछुआरे आने वाले हैं? अगर बड़ी मछली आलसी नहीं होती तो क्या होता? जब छोटी मछली को चोट लगी होगी तो उसने क्या सोचा होगा? जाल कैसे बनता है? कैसे पता चला कि छोटी मछली होशियार थी? मछलियां जाल को तोड़ क्यों नहीं पाती होंगी? छोटी मछली ने क्यों कहा कि मुझे कोई पकड़ नहीं सकता? अगर दोनों मछलियां नन्ही मछली की बात मानतीं तो क्या होता? छोटी मछली ने बड़ी मछली से क्या कहा? अगर मछुआरों का जाल इतना बड़ा होता कि वो झील के दूसरे किनारे तक पहुंच जाता तो क्या होता? मछुआरे मछलियों को क्यों पकड़ते होंगे? जिस दिन मछुआरे झील को देखने आए तो उन्होंने उसी दिन मछलियां क्यों नहीं पकड़ीं? अगर मछुआरे झील के किनारे नहीं आते तो क्या होता? नन्हीं मछली उन दोनों मछलियों को जबरदस्ती अपने साथ क्यों नहीं ले गई?

मेरा अनुभव कहता है

कुछ अन्य पाठों पर बातचीत करते हुए मैंने बच्चों के अनुभवों के आधार पर किताबें ढूंढनी चाहीं तो उन्होंने कई किताबों के संदर्भ दे दिए। जब हमें पुस्तकालय में कोई कविता या कहानी ऐसी मिल जाती है, जो बच्चों की पाठयपुस्तक में भी है तो बच्चे खुशी से उछल पड़ते हैं। भले ही कुछ बच्चे अभी भी लिखने के स्तर पर गलतियां करते हों, पढ़ने में कमजोर हों पर उनमें कल्पनाशीलता, संवेदना, आत्माभिव्यक्ति, मुखरता, तर्क–वितर्क व निष्कर्ष तक पहुंचने की दक्षताओं में कहीं कमी नहीं है। बहुत से बच्चों को कविता व कहानी विधा के स्वयं के लेखन में भी सही–सही पहचान हो गई है। वे अपनी स्वयं

की कविता, कहानियां बनाते–सुनाते हैं। उनमें वो आत्मविश्वास है जिस पर कोई भी शिक्षक गर्व कर सकता है।

इस पूरी प्रक्रिया के दौरान मैंने पाया कि–

- बच्चे समूह में ज्यादा बेहतर काम करते हैं।
- हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे एक–दूसरे के सहयोगी बनकर सीखें, प्रतियोगी की भावना तो धीरे–धीरे स्वयं उनमें आ जाएगी।
- प्रत्येक की सीखने की गति व दक्षताएं भिन्न होती हैं इसलिए बच्चों के साथ काम करते हुए धैर्य व समझ से काम लेना होता है।
- बिना दबाव व मूल्यांकन की भावना के पाठ्यपुस्तक के साथ अन्य पुस्तकों का सहज प्रयोग पाठ की रोचकता बढ़ा देता है। साथ ही एक विषय के विभिन्न पहलुओं पर भी समझ बनाता है।
- भाषा प्रत्येक विषय की नींव है। यदि भाषा में बच्चे की समझ अच्छी है तो यह अन्य विषयों को समझने में निश्चित मदद करती है।

मैंने जिन उददेश्यों को ध्यान में रखकर अपनी कार्ययोजना बनाई थी वो सफल रही। मैं आगे भी इस तरह का काम अपनी कक्षाओं में करती रहूंगी, आखिर मुझे अपने बच्चों पर नाज जो है। ये प्रक्रियाएं मीठे फल पाने की आस में बीज भरा–पूरा वृक्ष बनेंगी, अपनी उपस्थिति से सबका मन मोह लेंगी और जीवनोपयोगी तो होंगी ही।

रेखा चमोली : सहायक अध्यापक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय,गणेशपुर, भटवाड़ी, उत्तरकाशी, उत्तराखंड। रेखा की पहचान एक संवेदनशील कवयित्री के रूप में भी है।

शिक्षण की बुनियाद

✍ **लावण्य शर्मा**

शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को स्वयं की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति के योग्य बनाना है। इसके लिए आवश्यक है कि उनकी अंतर्निहित क्षमताओं को पहचान कर, उसके अनुरूप व्यक्तित्व को विकसित होने के अवसर एवं वातावरण उपलब्ध कराया जाए।

प्राथमिक शिक्षा के माध्यम से बच्चों को विभिन्न जीवनोपयोगी विषयों का प्रारंभिक शिक्षण कराया जाता है और उच्च शिक्षा तक पहुंचकर वे अपनी अभिवृत्तियों एवं रुचियों के अनुरूप ऐच्छिक विषयों का चयन करते हैं। अक्सर यह पाया जाता है कि औसत स्तर के छात्र–छात्राएं विषय चुनाव को लेकर भ्रमित रहते हैं। यही चुनाव उनके जीवन का एक अहम मोड़ साबित होता है और उनके भविष्य की दिशा निर्धारित करता है।

एन.सी.एफ. 2005 का मंतव्य भी यही है कि शिक्षण के दौरान संवाद प्रक्रिया अपनाई जाए और बच्चों को अधिक से अधिक अभिव्यक्ति के मौके दिए जाएं, जिससे वे अध्ययन प्रक्रिया में सक्रियता से भाग लेकर अधिक से अधिक अधिगम सीख सकें।

मुझे विद्या भवन, उदयपुर की नर्सरी में बिताया अपना बचपन याद आ रहा है। हमें एक खुले माहौल में कभी गार्डन में सब्जी उगाना सिखाया जाता, कभी रेत में आकृतियां बनाने का समय दिया जाता,तो कभी कक्षा में तरह–तरह के गाने सिखाए जाते। आज मुझे महसूस होता है कि एक मौलिक, स्वतंत्र, स्पष्ट और निर्भीक व्यक्तित्व की मेरी पहचान की नींव नर्सरी स्कूल में ही पड़ी थी।

बच्चों की योग्यता का आकलन आमतौर पर परीक्षा परिणामों के आधार पर ही किया जाता है, इससे बच्चों में प्रतिस्पर्धा व तनाव उत्पन्न होता है। शायद यही कारण है कि प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर परीक्षाओं में ग्रेडिंग प्रणाली लागू की गई।

प्राथमिक स्तर पर बच्चों को अधिक से अधिक अभिव्यक्ति के अवसर देने हेतु निम्नलिखित बिंदुओं पर काम किया जा सकता है:–

- विद्यालय का वातावरण सहज व मित्रतापूर्ण हो।
- गतिविधियों का आयोजन नियमित रूप से किया जाए। शैक्षिक गतिविधियों में ग्रुप वर्क, प्रश्नोत्तर, प्रोजेक्ट वर्क, लेख व कविता–लेखन सम्मिलित हों। वहीं सह–शैक्षिक गतिविधियों में गायन, नृत्य, कविता–पाठ, खेलकूद व आसपास के स्थानों पर शैक्षिक भ्रमण, कल्पनाशीलता व विचार शक्ति के विकास को गति देते हैं।
- शिक्षण प्रक्रिया की गति बच्चों के स्तर के अनुकूल हो व समाज आधारित हो, जिससे बच्चा कक्षा के वातावरण से सामंजस्य स्थापित कर सके एवं सक्रियता से भाग ले सके।
- मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति के दौरान बच्चों को अपनी पूरी बात कहने दी जाए, तत्पश्चात् उसमें स्नेहपूर्वक सुधार करवाया जाए।
- अच्छे प्रदर्शन पर शाबाशी दी जाए, प्रशंसा की जाए।
- प्रोजेक्ट वर्क को गृह कार्य के रूप में देने के बजाय समस्त सामग्री विद्यालय द्वारा उपलब्ध करवा कर, शिक्षक अपने निर्देशन में उसे करवाएं।
- विद्यालय में पुस्तकालय कक्ष हो, जहां बालोपयोगी पत्र–पत्रिकाएं नियमित रूप से पढ़ने को दी जाएं। पढ़ी गई सामग्री पर कक्षा में चर्चा की जाए और उनकी पसंद, नापसंद पर कारण सहित उनके विचार जाने जाएं।
- शिक्षण के दौरान बच्चों को अधिक से अधिक प्रश्न पूछने के अवसर मिलें।
- 'मौलिकता' अभिव्यक्ति की आत्मा है, अतः बच्चों को एक–दूसरे की नकल या परस्पर प्रतिस्पर्धी बनने की बजाय मौलिक होने पर बल दिया जाए।
- अभिव्यक्ति की पहली शर्त है सहजता, स्वतंत्रता एवं स्वीकार्यता।

यदि उपर्युक्त सभी बातों को व्यावहारिक रूप से अपनाया जाए, तो निश्चित रूप से बच्चों का अधिगम के दौरान प्रदर्शन श्रेष्ठ रहने के साथ–साथ उनके स्वयं के व्यक्तित्व में अपेक्षित निखार आ सकेगा।

लावण्य शर्मा : अनुसंधान सहायक ,राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर।

अव्यक्त की अभिव्यक्ति

✍ जया राठौड़

''आज अपने व्यावसायिक जीवन में मुझे बच्चों के बारे में सोचने, जानने का मौका मिला है। मेरा अपना भी एक बच्चा है। मुझे लगता है, कक्षा कक्ष का माहौल इन छोटे–छोटे बच्चों के जीवन को कितना प्रभावित कर सकता है। बच्चे जो अपने जीवन में सीखने की नई–नई कोशिश करते हैं, उन्हें अपनी किसी सही या गलत कोशिश पर मिलने वाली कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया उनके जीवन के लिए प्रेरणा बन सकती है, या नकारात्मक प्रतिक्रिया हमेशा–हमेशा के लिए उनकी अभिव्यक्ति, उनमें छिपी सृजनात्मकता को दबा सकती है।'' *–लेखिका*

अट्ठारह साल पहले

सातवीं पास करके निकली तो आठवीं कक्षा में मेरा दाखिला एक नए स्कूल में करवाया गया। यह नया स्कूल बहुत ''बड़ा'' माना जाता था, लेकिन यहां के माहौल के साथ खुद को जोड़ पाना मेरे लिए थोड़ा मुश्किल हो रहा था। मैंने कोशिश की, परंतु असहजता थी कि खत्म नहीं हो पा रही थी। मैं पिछले स्कूल में अपने शिक्षकों से भी बहुत खुलकर बात करती थी, फिर दोस्तों की तो बात ही क्या थी। पर यहां अभी ऐसा माहौल नहीं था। मुझे लगा कि थोड़े समय बाद सब कुछ 'पुराने' स्कूल की तरह हो जाएगा, पर हुआ कुछ और ही।

स्कूल खुलने के दो–तीन दिन बाद कक्षा का कार्यक्रम निर्धारित हो गया और पढ़ाई शुरू हो गई। मुझे इंतजार था नए स्कूल की नई 'क्लास टीचर' का। पुराने स्कूल में हर कक्षा की एक 'क्लास टीचर' होती थीं, जो अपनी कक्षा के सारे बच्चों को बहुत अच्छी तरह से जानती और समझती थीं। यहां तक कि दूसरे विषयाध्यापकों के साथ कोई भी परेशानी होने पर 'क्लास टीचर' ही हमारी मदद करती थीं। मुझे तो ऐसा लगता था जैसे वे हमारी स्कूल वाली 'मम्मी' हैं।

आखिरकार नई 'क्लास टीचर' का इंतजार खत्म हुआ। मेरी उनसे वही अपेक्षाएं थीं जो मैं अपनी पुरानी क्लास टीचर्स से रखती थी। मेरी अपेक्षा थी कि नए स्कूल के नए माहौल में खुद को जोड़ पाने में वे मेरी मदद कर पाएंगी। मैं थोड़ा खुश भी थी। विज्ञान विषय के पहले पीरियड में 'मैडम' हमारी क्लास में आईं और बिना किसी परिचय के सीधे पहला पाठ शुरू कर दिया। वे अपनी किताब में और हम लोग अपनी–अपनी किताबों में देख रहे थे, आधा घंटा हुआ, वे चली गईं। मुझे लगा शायद वे कल हम लोगों से बातचीत

करेंगी। दूसरे अध्यापकों से भी कोई बातचीत नहीं हो पाई।

अगले दिन जब फिर मैडम आईं तो पहले उन्होंने पाठ पूरा किया। फिर पाठ पर प्रश्न पूछने शुरू किए। मैंने सोचा, चलो संवाद तो शुरू हुआ। अब धीरे–धीरे सब बच्चे आपस में और उनके साथ भी घुलमिल जाएंगे। उनके सवाल शुरू हुए। जवाब मालूम होने पर मैं अपना हाथ उठाती, इस इंतजार में कि अब वे मुझे बोलने का मौका देंगी। पर उस दिन तो मेरा नंबर नहीं आया। अगले दिन कक्षा में बैठक व्यवस्था का रोटेशन हुआ और पूरे एक सप्ताह के लिए हमारी लाइन सबसे पीछे चली गई। अगला दिन आया, मैडम आईं और सवाल–जवाब शुरू हुए। मैं अपनी बारी का इंतजार करने लगी। थोड़ी देर बाद मुझे महसूस हुआ कि वे सिर्फ आगे की लाइन में बैठने वाले बच्चों से बात करती थीं, पीछे के बच्चों से उनका कोई लेना–देना नहीं था। मैंने जवाब मालूम होने पर हाथ खड़ा करना जारी रखा। एक सवाल ऐसा आया कि हाथ उठाने वाली मैं अकेली थी, सवाल थोड़ा मुश्किल था। उन्होंने मुझे जवाब देने को कहा। मैं उठी। जैसे ही मेरा जवाब खत्म हुआ, उन्होंने मुझे बुरी तरह झिड़क दिया, क्योंकि मैं गलत थी। उनकी झिड़क तो मुझे बुरी लगी ही, पर उस वक्त कक्षा के दूसरे बच्चों की ठहाके वाली हंसी उससे भी ज्यादा बुरी लग रही थी। उन्होंने कहा कि, ''जवाब नहीं आता तो हाथ क्यों उठाती हो।'' पूरी कक्षा में बस मैडम और मैं दोनों खड़े थे, बाकी सभी बच्चे बैठे हमें देख रहे थे। मुझे उन पर बहुत गुस्सा आ रहा था कि वे पूरी कक्षा के सामने मुझसे इस तरह से क्यों बात कर रही हैं। जवाब गलत हुआ तो क्या हुआ, मैंने कोशिश तो की थी न। इसके बाद जब तक पीरियड खत्म नहीं हुआ मैं खड़ी रही। मैंने उसी समय तय कर लिया कि अब चाहे जो हो जाए, मैं इन 'मैडम' से बात नहीं करूंगी। मैंने किया भी ऐसा ही।

उस दिन के बाद पूरा एक साल (वार्षिक परीक्षा तक) मैंने उनके सामने एक शब्द नहीं बोला। हां, होमवर्क, क्लास वर्क मैं कर लिया करती थी, पर मौखिक प्रतिक्रिया नहीं करती थी। मुझे जवाब पता भी होता था, तब भी नहीं बोलती थी। शुक्र था कि विज्ञान में मौखिक परीक्षा नहीं होती थी। न जाने कितनी बार मुझे सजा मिली, यहां तक कि प्रिंसीपल रूम के बाहर भी खड़ा किया गया, लेकिन मैं नहीं बोली। दूसरे विषयाध्यापकों के सामने अब मैं सहज हो गई थी और मेरे दोस्त भी बन गए थे। लेकिन उन मैडम के साथ वही रिश्ता रहा।

साल खत्म हुआ। वार्षिक परीक्षा हुई। परिणाम आया और पापा को बुलाया गया। अंक तालिका कक्षा टीचर के पास से ही लेनी थी। मैं पापा को लेकर उनके पास गई। उन्होंने मेरी शिकायतों का जो बखान शुरू किया तो पापा सन्न रह गए। वे समझ नहीं पा रहे थे कि माजरा क्या है। शिकायतों का दौर खत्म हुआ, मैडम ने मार्कशीट निकाली और पापा को पकड़ा दी। मैंने देखा मार्कशीट मेरी हमनाम, कक्षा की दूसरी लड़की की थी। मैंने पापा से मार्कशीट ली और मैडम से कहा, यह मेरी नहीं है, मेरी मार्कशीट दीजिए। इससे मुझे पता चला कि मैडम को तो मेरा पूरा नाम भी मालूम नहीं था। कक्षा में मेरे व्यवहार को देखकर उन्होंने कम अंकों वाली मार्कशीट निकालकर पापा को दे दी थी। जब मैडम ने मेरी मार्कशीट देखी तो वे अंक देखकर दंग रह गईं। चौरासी प्रतिशत के साथ कक्षा में तीसरा स्थान था मेरा।

उन्होंने पापा से अपनी गलती के लिए माफी मांगी। फिर मेरे रवैये के बारे में पापा को बताया। जब दोनों (पापा और मैडम) ने मुझसे इसका कारण पूछा तो मैंने साल भर पहले घटी घटना का वर्णन कर दिया।

अट्ठारह साल बाद

आज भी मैं उस दिन को उसी तरह महसूस करती हूं। जब मेरे गलत जवाब पर सबके सामने मुझे झिड़क दिया गया था,

मेरा मजाक उड़ाया गया। एक शिक्षिका होने के नाते शायद उनके लिए किसी बच्चे को डांटना कोई बड़ी बात नहीं रही होगी, पर उनके उस व्यवहार ने मेरे जीवन पर जाने–अनजाने बहुत प्रभाव डाला। लंबे समय तक बड़े समूह के सामने अपनी बात रखने में मुझे बहुत झिझक महसूस होती रही। लेकिन मैं इसे अपनी खुशकिस्मती मानती हूं कि स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर मुझे दोबारा वह माहौल मिला, जिसने मेरे खोए हुए आत्मविश्वास को लौटाया। लेकिन यह टीस और सवाल मेरे मन में हमेशा बना रहा कि क्या मैं सही थी? क्या मेरा नजरिया सही था? अगर मैं गलत थी तो क्या 'मैडम' को यह जानने की कोशिश नहीं करनी चाहिए थी कि मैं उनसे संवाद क्यों नहीं करती हूं? और अगर वे समझ नहीं पा रही थीं, तो क्या मुझे कोई और तरीका नहीं खोजना चाहिए था अपनी बात कहने का?

इन सवालों के कुछ जवाब हाल ही में मुझे मिले अपने बेटे के मार्फत। साढ़े तीन साल के बेटे ने नर्सरी में जाना शुरू किया था। स्कूल जाते हुए उसे दो महीने हो गए थे। एक दिन छुट्टी के समय उसकी शिक्षिका ने मुझसे कहा कि आपका बेटा बहुत शरारती है और पढ़ाई में कमजोर। इसे कुछ भी नहीं आता है। वे तमाम उदाहरण देती रहीं। मैं चुपचाप सुन रही थी। मुझे उनकी बातें परेशान कर रही थीं। क्योंकि बेटा बहुत मुखर था, वह तुरंत जवाब देता था। शिक्षिका जिन बातों के न आने का जिक्र कर रही थीं, वह उससे कहीं अधिक जानता था। मैं यह समझने की कोशिश कर रही थी कि वह कक्षा में क्यों नहीं बोलता होगा। अनायास ही मुझे अपने साथ अट्ठारह साल पहले घटी घटना याद हो आई।

जब मैं शिक्षिका से बात कर रही थी तो संयोग से बेटा, मेरा हाथ थामे पास ही खड़ा था। वह शिक्षिका की बातें सुन भी रहा था और शायद समझ भी रहा था। क्योंकि बार–बार हाथ खींचकर वह चलने का संकेत भी कर रहा था। मैंने तुरंत उसी समय बेटे से कहा कि देखो, आपकी शिक्षिका क्या कह रहीं हैं, क्या यह सही बात है। वह चुपचाप गरदन नीचे झुकाए सुनता रहा। मैंने थोड़ी कड़क आवाज में उससे फिर पूछा। इस बार उसने अपना चेहरा मेरी तरफ घुमाया और सहजता से कहा,' अगर टीचर डांटकर पूछेंगी तो मैं कभी नहीं बताऊंगा।' मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि माजरा क्या है। क्योंकि वह घर में भी इस तरह का व्यवहार करता है। उससे डांटकर कोई काम नहीं करवाया जा सकता। मैंने इस बात को ऊपर से तो ज्यादा गंभीरता से नहीं लिया। पर वास्तव में इस बात की गहराई को ध्यान में रखकर शिक्षिका से बातचीत की।

बेटे से कहा कि अपनी शिक्षिका को सॉरी बोले। बेटे ने अनमने भाव से सॉरी बोल दिया। शिक्षिका ने भी उस समय बात खत्म कर दी। पर मैंने महसूस किया कि उसके बाद साल भर तक फिर ऐसी कोई समस्या नहीं आई।

एक बार फिर मुझे अपने साथ घटी घटना याद आई। काश कि उस समय किसी ने इस तरह मेरी भी मदद की होती। मुझे यह भी याद आया कि चित्रकला में रुचि होने के बावजूद मैंने पोस्टर प्रतियोगिता में केवल इसलिए हिस्सा

विमर्श–9

संकोच, झिझक और भय

✍ **उषा वैष्णव**

हर व्यक्ति अपने आपको अलग ढंग से अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति के विभिन्न ढंग उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। अभिव्यक्ति ही मनुष्य–मनुष्य के बीच सेतु का कार्य करती है। अपने विचारों को कब, कहां, कैसे प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना है, व्यक्ति के संतुलित व्यक्तित्व के लिए इसकी समझ होना बहुत जरूरी है और यही हमारी शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य भी है।

मात्र अक्षर ज्ञान अथवा गणित का लेखा–जोखा शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। उचित ढंग से अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास भी शिक्षा द्वारा ही संभव है। हमें विद्यार्थी को उसके स्वभावानुसार विचारों की अभिव्यक्ति हेतु प्रेरित करना चाहिए। विद्यार्थी अंतर्मुखी है तो कोशिश होनी चाहिए कि वह अधिक मुखरित होकर स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित हो। यदि वह बहिर्मुखी है तो उसमें यह विवेक जागृत करना होगा कि वह अपने आपको कहां और कैसे अभिव्यक्त करे।

यह निरन्तर प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थी अपने विचारों को मौलिक रूप में अभिव्यक्त करे। विशेषकर प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर ही विद्यार्थी को मौलिक विचाराभिव्यक्ति का अभ्यास कराना चाहिए। पाठ पढ़ाकर प्रश्नों के उत्तर मौलिक रूप से लिखने हेतु प्रेरित और प्रोत्साहित करना चाहिए। बच्चे बहुत कल्पनाशील होते हैं। उनकी कल्पना को प्रतिभा और क्षमता के अनुसार अभिव्यक्त करने हेतु प्रेरित किया जाए तो निश्चित रूप से यह उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यंत लाभदायक होगा।

बच्चे स्वभाव से निडर और जिज्ञासु होते हैं। किसी भी नए कार्य को करने में हिचकते नहीं हैं परन्तु उम्र बढ़ने के साथ–साथ उनमें संकोच, झिझक और भय पनपने लगता है। मुझे लगता है कि हमें अपनी कक्षाओं में समय–समय पर कुछ ऐसे क्रियाकलाप करते रहना चाहिए जो विद्यार्थी में यह संकोच कभी पनपने ही न दें।

उषा वैष्णव : राजकीय कन्या माध्यमिक विद्यालय, कन्नौज, चित्तौड़गढ़,राजस्थान में पढ़ाती हैं।

नहीं लिया था क्योंकि मेरी क्लास टीचर ही उस प्रतियोगिता की इंचार्ज थीं। कारण जो भी रहे हों, पर मैं अपनी तरफ से कोई और पहल नहीं कर पाई।

मैंने महसूस किया कि मेरे बेटे को ऐसी स्थिति से रूबरू न होना पड़े, इसके लिए उसे तैयार करना होगा। इस तैयारी के लिए मुझे जल्द ही एक अवसर और मिल गया। हुआ यह कि बेटे ने अपनी एक कॉपी के पन्नों पर बेतरतीब ढंग से पेंसिल चला दी (हालांकि वह हमारे लिए बेतरतीब ढंग था, उसके लिए शायद चित्रकारी)। शिक्षिका की लिखित टिप्पणी मिली कि, your child has done this in the class. शायद बेटे को डांट भी पड़ी थी। यह वह शिक्षिका थी जिसे बेटा सबसे अधिक पसंद करता था। मैंने कॉपी दिखाकर उससे पूछा, कि ये सब क्या है। उसने कहा, 'गलती हो गई। अब क्या करूं?' फिर खुद जाकर एक कागज लाया और बोला, इस पर बिंदु लगा दो मुझे sorry लिखना है। उसने सॉरी लिखा, ले जाकर अपनी शिक्षिका को दिया। शिक्षिका ने भी उस पर लिखा, ok! be a good boy!

मुझे लगता है बेटे ने न केवल अपनी गलती महसूस की, साथ ही यह भी सीख लिया कि उसे सुधारा कैसे जाना है।

बतौर शिक्षक या माता–पिता यह बहुत जरूरी है कि हम बच्चों की मदद करें कि वे खुलकर अपनी बात कह सकें, चाहे वह बात गलत हो या सही। गलत को सही करने के तो और बहुत मौके उन्हें जीवन में मिल जाएंगे। परंतु यदि उनका अभिव्यक्त करने का आत्मविश्वास चला गया तो उसे दोबारा जगाना बड़ा मुश्किल हो जाएगा।

जया राठौड़ : सदस्य, संपादन टीम ''खोजा''। विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर में कार्यरत।

व्यक्तित्व निखारता नृत्य

✍ सपना राठौड़

कला अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। कला का कोई भी रूप, चाहे वह नृत्य, गायन, वादन, चित्रकारी या मूर्तिकला हो, सभी के द्वारा कुछ अभिव्यक्त किया जाता है। गीत के भाव नृत्य से तो अभिव्यक्त होते ही हैं, साथ ही उसकी संस्कृति भी अभिव्यक्त होती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार, ''कला के विविध माध्यम और स्वरूप बच्चों को खेल–खेल में तथा विषयबद्ध रूप में विकसित होने में मदद करते हैं। उन्हें अभिव्यक्ति के कई रास्ते सिखाते हैं। संगीत, नृत्य और नाटक विद्यार्थियों के आत्मबोध, उनके ज्ञानात्मक और सामाजिक विकास में सहायक होते हैं।''

आज मैं जीवन में जहां हूं, वहां पहुंचने में शिक्षा से प्राप्त डिग्रियों से ज्यादा पाठ्य सहगामी क्रियाओं का योगदान मानती हूं। पाठ्य सहगामी क्रियाओं से मेरे अंदर जो परिवर्तन आया वह उस समय महसूस नहीं कर पाती थी, किंतु आज स्पष्ट समझ पा रही हूं।

मैंने तीसरी कक्षा से भरतनाट्यम सीखना शुरू किया और मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति प्राप्त की। नृत्य में विशेष रुचि होने से निरंतर स्टेज पर कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अवसर मिलते रहे। पढ़ाई में विद्यालय में साधारण छात्रा थी, मगर स्टेज जैसे मेरा अपना होता था और वहां मेरा कोई मुकाबला नहीं था, जिससे मेरा आत्मविश्वास बढ़ता था।

वही आत्मविश्वास आज कार्यक्षेत्र में मेरा सहायक है। महाविद्यालय की प्राचार्य के रूप में जब स्टेज पर जाती हूं, तो जो स्टेज बचपन से मेरा था वही अनुभूति होती है और आत्मविश्वास जाग्रत होता है और जो कहना या अभिव्यक्त करना होता है, वह आसानी से कर पाती हूं।

अपने विद्यालयी जीवन से जुड़ी कुछ घटनाओं का जिक्र करना चाहूंगी। जिस विद्यालय में पढ़ी, वहां पाठ्य सहगामी क्रियाओं को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। वार्षिकोत्सव में किसी एक विषय को लेकर दस–बारह दिन तक पहली कक्षा से ग्यारहवीं कक्षा तक सभी उसी विषय पर अध्ययन करते थे। आखिरी दिन एक सांस्कृतिक कार्यक्रम होता था और वह भी उसी विषय पर आधारित होता था।

जब मैं पांचवीं कक्षा में थी तब 'महाराष्ट्र' विषय चुना गया। नृत्य सिखाने महाराष्ट्रियन अध्यापक आए। नृत्य की प्रस्तुति के समय 9 गज की साड़ी और नाक में बड़ी सी नथ पहनी थी। आज जब भी महाराष्ट्र की संस्कृति की बात होती है, मुझे पांचवीं कक्षा में नृत्य या गीत के माध्यम से जानी, सीखी व समझी गई बातें याद हो आती हैं। करके सीखा था अतः स्थायी हो गया।

इसी प्रकार 'गंगा' विषय पर वार्षिकोत्सव हुआ, तब जो पर्वतीय नृत्य प्रस्तुत किया गया, वह पहाड़ी धुन पर था। पहाड़ी धुन का माधुर्य उस उम्र में मुझे समझ आ गया था। आज भी वह गाना मुझे कंठस्थ है, मैं उस समय आठवीं कक्षा की छात्रा थी। जबकि आठवीं कक्षा में सामाजिक अध्ययन या विज्ञान में क्या पढ़ा था, वह याद नहीं।

रवींद्र संगीत मुझे बहुत प्रिय है। बंगला समाज से कई वर्ष जुड़े रहने से रवींद्र संगीत जाना, समझा व शांतिनिकेतन शैली का नृत्य भी सीखा। 'ऋतुरंग' नृत्य नाटिका के माध्यम से बंगाली में ऋतुओं पर आधारित नृत्य किए थे। प्रत्येक ऋतु में बंगला के वे गीत याद हो आते हैं। कितना सुंदर रचा था रवींद्र नाथ टैगोर ने ऋतुरंग के गीतों को। स्वयं बंगाली न होते हुए भी मैं अभिव्यक्ति के उस सौंदर्य को महसूस कर पाती हूं।

मेरा सौभाग्य है कि जिस विद्यालय में पढ़ी, सरकारी नौकरी छोड़कर वहीं शिक्षिका बनी। शिक्षिका के रूप में 'अरावली' विषय पर आधारित वार्षिकोत्सव याद है। अरावली पर्वत श्रृंखला में बसने वाली गरासिया जनजाति का नृत्य मैंने तैयार करवाया था। मुझे स्वयं वह नृत्य वीडियोज देखकर सीखना पड़ा और कंपोज करना पड़ा। बहुत ही अलग अनुभव था। उस नृत्य के लिए मंगवाई गई वेशभूषा वास्तविक गरासिया जनजाति के लोगों की ही थी, जो गांव से केवल एक दिन के लिए मंगवाई गई थी और गांव वालों ने अपनी सबसे नई ड्रेस दे दी थी। उस नृत्य को करने वाले विद्यार्थियों ने सामाजिक अध्ययन में कई और जनजातियों के जीवन परिचय में उनके रहन–सहन के बारे में पढ़ा होगा, जो शायद उन्हें याद न हो मगर गरासिया जनजाति की वेशभूषा, नृत्य व गीत को वे कभी नहीं भूल सके होंगे। हमारे इस तरह के प्रयासों से बच्चों का देश की विविध कलात्मक परम्पराओं से परिचय सहज रूप से हो जाता है।

हिमाचल प्रदेश में 'नॉनी' स्थित विश्वविद्यालय में एक राष्ट्रीय स्तर की वर्कशाप में भाग लेने का अवसर मुझे मिला। वहां आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम में असम से आई एक शिक्षिका से सीखकर मैंने उनके साथ 'बिहू नृत्य' किया था। उस नृत्य की प्रस्तुति के बाद सभी ने कहा, ये राजस्थान की बाला असम की कब बन गई।

नृत्य कोई भी हो, किसी भी भाषा का हो, उसको अभिव्यक्त करना, उसके भावों को व्यक्त करना महत्त्वपूर्ण होता है। जो विद्यार्थी संकोची हैं, आगे नहीं आते, मगर उनमें नृत्य, चित्रकला या गायन के प्रति रुझान है तो एक शिक्षिका के रूप में मैं इन माध्यमों से उनमें आत्मविश्वास विकसित कर पढ़ाई में भी आगे लाने का प्रयास करती हूं। शिक्षिका बनी तो नृत्य की कक्षाएं लीं और विद्यालय के सभी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में नृत्य कंपोज कर सिखाए व प्रस्तुत करवाए। स्वयं स्टेज पर प्रस्तुति देना या विद्यार्थियों द्वारा करवाने में अंतर है। पर विद्यार्थियों से करवाने से जो प्रशंसा या सफलता मिलती है, उससे मुझे सदैव ही ज्यादा आनंद मिलता है, क्योंकि उस नृत्य में मेरा कंपोजिशन होता है यानी मेरी अभिव्यक्ति का प्रदर्शन होता है। इसलिए उसकी सफलता ज्यादा सुखद लगती है।

मेरे व्यक्तित्व को निखारने–संवारने में मेरी नृत्य कला में रुचि होना तथा नृत्य सीखने और प्रस्तुति देने से सीखे हुए अनुभव का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

डॉ. सपना राठौड़ : शास्त्रीय नृत्य में भारत सरकार की सांस्कृतिक प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति प्राप्त की। शिक्षा में पीएच.डी. हैं। संप्रति, प्राचार्य, मौलाना आजाद शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जोधपुर।

भाषा की कक्षा में कविता

✍ मनोहर चमोली

लोरी और शिशु गीत हम तीन माह के बच्चे को सुनाते आए हैं। तीन माह का बच्चा भी कभी–कभी अपने स्वरों से हमें इस बात का संकेत देता है कि उसे कुछ कर्णप्रिय सुनाई दिया है जो उसे भला–भला सा लगा है। धीरे–धीरे बच्चे की शब्द संपदा बढ़ने लगती है। बच्चा तीसरे साल में प्रवेश करते–करते हम बड़ों की बातों को आसानी से ग्रहण करने लगता है और अपनी बात भी आसानी से व्यक्त करने लगता है।

हम जानते हैं कि बच्चा जो अभी स्कूल गया भी नहीं है, यूं ही खेल–खेल में घर में रहते ही वर्ण पहचानने लगता है। पशु–पक्षियों की आकृतियों की स्पष्ट पहचान करने लगता है, यदि कक्षा कक्ष में हम इन्हीं बच्चों को भाषाई दक्षता विकसित करने के भरपूर अवसर देने लगें तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई भी बच्चा भाषा के स्तर पर पिछड़ा हुआ दिखाई दे। अन्य विषयों के साथ खुद को जोड़ ही न सके।

इसमें कोई दो राय नही कि बाल साहित्य से शिक्षक अपनी कक्षा को बेहतर ढंग से चला सकता है। यह और बात है कि सभी शिक्षकों ने इस ओर शायद ही कभी ध्यान दिया हो। भाषा का शिक्षक अक्सर अपने वादन में पाठ्यपुस्तक से इतर के बाल साहित्य की चर्चा करता रहा है। मैंने कक्षा सात और आठ के बच्चों को कुछ बाल कविताएं पढ़ने को दीं। वह भी तब जब वह मुझे फुरसत में नजर आए। मैंने यह ध्यान रखा कि एक बार में केवल एक ही कविता पढ़ने को दी जाए। बच्चों ने उन कविताओं को पढ़ा ही नहीं, गुनगुनाया भी। बच्चे अपने आप ही किसी कविता की लय खुद ही खोज लेते हैं। कुछ कविताओं को पढ़कर वे मुस्कराते भी हैं।

बच्चों ने कुछ कविताओं को पढ़कर दिलचस्प बातें मेरे साथ साझा कीं। यहां बच्चों के नजरिए को ही प्रस्तुत किया जा रहा है। कविता की प्रासंगिकता और भाव अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं। पाठक इन कविताओं पर बच्चों द्वारा की गई टिप्पणियों पर विचार करेंगे। एक बात और है। मुझे जो कविताएं आसानी से उपलब्ध हुईं, वे ही कविताएं मैंने बच्चों के सामने रखीं। बगैर इस बात का ख्याल रखे कि वे किसी कसौटी पर खरी उतरती हैं या नहीं। या यह कि आज के संदर्भ में इनकी प्रासंगिकता है या नहीं। वैसे भी इस आलेख का आशय कविताओं की समीक्षा तो कतई है ही नहीं। बच्चों से जिन कविताओं पर बात हुई उनमें से कुछ आंशिक रूप से यहां दी जा रही हैं।

हुआ सवेरा जागो भैया

हुआ सवेरा जागो भैया
खड़ी पुकारे प्यारी मैया
हुआ उजाला छिप गए तारे
उठो मेरे नयनों के तारे
झटपट उठकर मुंह धुलवा लो
आंखों में काजल डलवा लो।

(श्रीधर पाठक)

बच्चों ने पूरी कविता बार–बार पढ़ी ।

मैंने कहा,''अब इस कविता के बारे में बात करते हैं। जिसके मन में जो आ रहा है, बोल सकता है।''

कुछ देर सभी चुप रहे। अमूमन हमारा यह लहजा कभी होता ही नहीं। सो बच्चों को समझ नहीं आया कि अब करना क्या है। मैंने फिर कहा, ''कविता में अटपटा क्या लगा? जो भी लगा उसे कहना है।'' मेरे यह कहने की देर थी कि एक बालिका ने कहा, ''मेरा बड़ा भैया ही देर में उठता है। मैं तो संडे को भी जल्दी उठ जाती हूं। पापा भी खुद देर से उठते हैं और भैया को कुछ नहीं कहते। हमें दिन छिपने से पहले घर में आ जाना होता है, लेकिन भैया लोग अंधेरा होने के बाद भी यहां–वहां खेलते रहते हैं।''

मैं हैरान! मैं तो सोच रहा था कि बच्चे कविता की व्याख्या करेंगे। ये बताएंगे कि इसमें यह कहा गया है–वो कहा गया है।

एक बालक ने धीरे से कहा, ''घर में मां को ही ज्यादा काम करना पड़ता है। पिता जी जिस दिन घर में रहते भी हैं, उस दिन भी कुछ नहीं करते। कभी कहीं चले जाते हैं तो कभी कहीं। कभी उनसे मिलने कोई आ जाता है तो कभी वे कहीं बैठने चले जाते हैं। खाना खाने के लिए हमें बार–बार उन्हें खोजना पड़ता है।''

एक बालिका ने कहा, ''हम तो अपने आप ही अपना मुंह धो लेते हैं। मेरी मां कहती है कि आंखों में काजल नहीं लगाना चाहिए। आंखों में दवाई भी सोच–समझ कर लगानी चाहिए।''

एक लड़का तपाक से बोला, ''लड़कियां तो काजल लगाती हैं।''

एक बालिका ने पूछा, ''नयन का तारा... मतलब?''

मैं चुप रहा और मैंने सभी बच्चों को देखा। एक बालक बोला, ''यानि घर के बच्चे उठ जाओ।''

मैंने पूछा, ''घर के बच्चे मतलब सभी न?''

एक बालिका ने कहा, ''नहीं। मतलब ये लड़कों के लिए कहा गया है।''

''क्यों? क्या नयन के तारे लड़के ही होते हैं। लड़कियां नहीं?'' मैंने पूछा।

कक्षा की बालिकाओं ने सिर झुका लिया और लड़के तनकर खड़े हो गए। मैंने इस समय इस पर ज्यादा बात करना उचित नहीं समझा, इसलिए बात बदल दी। अच्छा अब इस कविता को पढ़कर कुछ सवाल बनाओ।

बच्चे सोच में पड़ गए और कॉपियों पर कुछ लिखने लगे। दूसरे दिन मैंने उनके सवालों को देखा। कुछ सवाल मुझे महत्त्वपूर्ण लगे। कविता सिर्फ आनंद के लिए होती है या गुनगुनाने के लिए होती है या रटकर सुनाने के लिए होती है। बच्चों ने तो कुछ और ही मकसद कविता का मान लिया था। बच्चे जो सवाल बनाकर लाए थे, वह लगभग ये थे–

हम सोते क्यों हैं? मां ही बच्चों का ध्यान क्यों रखती है? पिता क्यों नहीं? बच्चों को ही जल्दी उठने की सलाह क्यों दी जाती है?

दो दिन के उपरांत बच्चों को मैंने दूसरी कविता पढ़ने को दी।

यदि होता किन्नर नरेश

यदि होता किन्नर नरेश मैं, राजमहल में रहता
सोने का सिंहासन होता, सिर पर मुकुट चमकता
बंदी जन गुण गाते रहते, दरवाजे पर मेरे,
प्रतिदिन नौबत बजती रहती, संध्या और सवेरे
मेरे वन में सिंह घूमते, मोर नाचते आंगन
मेरे बागों में कोयलिया बरसाती मधु रस–कण।
(द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी)

बच्चों ने बड़े उल्लास और आनंद के साथ इस

कविता को पढ़ा। उनकी आंखों में अजीब सी चमक मुझे दिखाई दी। मुझे लगा कि यह कविता बच्चों को बेहद पसंद आई है।

मैंने कहा, ''इस कविता के बारे में सोचो। खूब सोचो। सोचकर बताओ। अब मैं यह नहीं कहूंगा कि क्या बताना है।''

बहुत देर तक कक्षा में सन्नाटा छाया रहा। बच्चों ने बारी–बारी से फिर कविता को देखा। एक बालक बोला, ''सोना तो बहुत मंहगा होता है।''

दूसरा बोला,''चुप! ये पुराने जमाने की कविता है। तब सोने के मकान होते थे। राजा अब कहां हैं?''

एक बालिका ने कहा, ''अब तो बाघ हमारे घरों में घुस रहे हैं। हमारे जानवरों को खा रहे हैं।''

एक बालक ने मुझसे कहा, ''आपने तो कहा था कि कोयल नहीं गाती। नर कोयल गाता है।''

मैंने हां में सिर हिलाया। फिर कहा कि अब इस कविता से कुछ सवाल बनाओ। मध्यांतर के बाद मैंने बच्चों के बनाए सवाल देखे। कुछ सवाल ये थे –राजा के सिर पर मुकुट क्यों होता था? बंदी से चक्की क्यों पिसवाई जाती थी? राजा न्याय करने वाला होता था, आज राजा क्यों नहीं बचे?

देल छे आए

बाबा आज देल छे आए,
चिज्जी–पिज्जी कुछ ना लाए।
बाबा, क्यों नहीं चिज्जी लाए,
इतनी देली छे क्यों आए?
कां है मेला बला खिलौना,
कलाकंद लड्डू का दोना।

(श्रीधर पाठक)

कक्षा सात के बच्चों को यह कविता अधिक पसंद आई। मैंने फिर वही चर्चा की।

एक बालिका ने कहा,''ये कौन से वाले बाबा हैं?''

एक बालक ने कहा,''मतलब?''

वही बालिका बोली, ''मतलब ये कि साधू बाबा या भोले बाबा।'' कक्षा के अन्य बच्चे हंसने लगे।

एक बालिका मेरी ओर देखते हुए बोली,''अरे बाबा। ये बाबा यानि पापा हैं। कोई छोटा बच्चा अपने पापा से पूछ रहा है।'' मैंने जोड़ा, ''ये कोई छोटी बच्ची भी तो हो सकती है।'' सबने सिर हिलाया।

मैंने फिर कहा, ''अब बारी है इस कविता से सवाल बनाने की। चलो हो जाओ शुरू।'' यह कहकर मैंने उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया। कक्षा सात के बच्चों ने सामान्य से प्रश्न बनाए। लेकिन कक्षा आठ के बच्चों के कुछ प्रश्न चौंकाने वाले थे।

घर के बड़े देर से ही क्यों आते हैं? बच्चों को पढ़ाई के लिए ही क्यों कहा जाता है? हम बच्चों के खेलने का सही समय क्या है? बच्चों को जबरदस्ती दूध पीने के लिए क्यों कहा जाता है?

उठो लाल

उठो लाल अब आंखें खोलो,
पानी लाई हूं मुंह धो लो।
बीती रात कमल–दल फूले
उनके ऊपर भौंरे झूले।
चिड़िया चहक उठीं पेड़ों पर,
बहने लगी हवा अति सुन्दर।

(अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध')

यह कविता बच्चों ने लय के साथ पढ़ी। कविता पढ़ने के बाद बच्चों की बातचीत बड़ी दिलचस्प थी।

एक बालक ने कहा, ''ये बच्चों को ही बार–बार जगाया क्यों जाता है। जिसे देखो वह यही कहता है कि उठो। जागो। देर तलक मत सोओ।''

एक बालिका ने कहा,''वैसे फूल तोड़ना अच्छी बात नहीं है। अब तो चिड़िया दाना खाने भी नहीं आतीं।''

दूसरे बालक ने कहा,''हमारे घरों में रंग–बिरंगे फूल तो हैं लेकिन तितलियां फिर भी नहीं आतीं। पता है मेंढक तो कब से नहीं देखे मैंने।'' मैंने उनकी बातचीत में कोई बाधा नहीं डाली और कक्षा से दूसरी कक्षा में चला गया। कक्षा आठ के बच्चों ने कविता तो पढ़ी लेकिन कोई विशेष बातचीत नहीं की। कविता से सवाल कुछ हटकर आए। कुछ सवाल यहां दिए जा रहे हैं।

कविता में लड़कियां ज्यादा क्यों नहीं होतीं? लड़के ही क्यों होते हैं? घर में बच्चों की देख–रेख पुरुष क्यों नहीं कर सकते? वृक्षारोपण में अच्छे पौधों को उखाड़कर नई जगह क्यों लगाया जाता है? जबकि वे नई जगह पर लगा देने पर सूख जाते हैं। भौंरा तितली की तरह सुंदर क्यों नहीं होता?

विनती सुन लो

विनती सुन लो हे भगवान,
हम सब बालक हैं नादान
विद्या बुद्धि नहीं कुछ पास,
हमें बना लो अपना दास।
बुरे काम से हमें बचाना
खूब पढ़ाना खूब लिखाना
हमें सहारा देते रहना,
खबर हमारी लेते रहना
तुमको शीश नवाते हैं हम
विद्या पढ़ने जाते हैं हम।

(मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी')

यह कविता जब मैंने बच्चों को पढ़ने को दी तो मुझे लगा कि बच्चे इसे पढ़ने में दिलचस्पी नहीं लेंगे। लेकिन इस कविता में बच्चों को ज्यादा मजा आया। यह बच्चों को कंठस्थ याद भी हो गई। अगले दिन मैंने कहा, ''विनती सुन लो हे भगवान वाली कविता पर बात करते हैं।''

एक बालिका ने कहा, ''सब कुछ अच्छा है, लेकिन

दास बनाने वाली बात ठीक नहीं लगी मुझे।''

थोड़ी देर कक्षा में शांति छा गई। दूसरी बालिका बोली, ''लेकिन यह जरूरी नहीं कि बड़े नादान न हों। और नादानी सिर्फ बच्चे ही नहीं करते।''

एक बालक जो अक्सर चुप रहता है। वह बोला, ''पढ़ना–लिखना मन से होता है। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए।''

मैंने कहा, ''चलिए। एक बार फिर से इस कविता को पढ़िए और कुछ हट कर सवाल बनाइए।''

दो दिन बाद मैंने उन सवालों पर गौर किया। कुछ सवाल ये थे–

बच्चों की विनती कोई क्यों नहीं सुनता? भगवान हमें अपना दास क्यों बनाना चाहेंगे? यदि विद्या भगवान देता है तो स्कूल ही क्यों खोले गए हैं?

एक बात तो मुझे अच्छे से समझ आई कि बच्चों को प्रश्न बनाने में ज्यादा आनंद आया। यह भी कि वह सोचने वाले प्रश्न ज्यादा बनाते हैं। कविता पढ़ने के लिए होती है या सोचने के लिए या सवाल उठाने के लिए या कविता का कुछ और मकसद होता है। इस पर और सोचने की जरूरत है। कविता मेरे लिए कुछ और हो सकती है और आपके लिए कुछ और। एक ही कविता मेरे लिए आज कुछ और हो सकती है और कल कुछ और। कविता का कोई एक खास मकसद नहीं होता। कहीं न कहीं कविता बच्चों में समझ भी बनाती है। कविता सोचने के लिए एक रास्ता सुझाती है। कई बार कविता केवल मन को सुकून देने का ही काम भी करती है।

मनोहर चमोली 'मनु' : अध्यापक हैं और बच्चों के लिए कहानी, कविताएं लिखते हैं। संपर्क : कांडई रोड,पोस्ट बॉक्स–23,पौड़ी,पौड़ी गढ़वाल, 246001 उत्तराखंड।

पढ़ने–लिखने के नए आयाम

पढ़ना–लिखना (Reading and writing) पर विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर ने जून 2013 में पांच दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला विद्या भवन की संस्थाओं में सेवारत अध्यापकों–प्राध्यापकों की अंग्रेजी भाषा में पढ़ने–लिखने संबंधी क्षमता संवर्द्धन पर केंद्रित थी। इसमें लगभग 75 अध्यापकों, प्राध्यापकों और कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया।

पढ़ने का क्षेत्र बहुत व्यापक है। भाषा सर्वत्र विद्यमान है, अतः कोई भी विषय पढ़ने के दायरे में आ सकता है। विषयों की सीमा नहीं है। हर तरह की पैकिंग पर लिखे विवरण से लेकर सड़कों के किनारे लिखे होर्डिंग्स, सूचनाएं, विज्ञापन, विभिन्न ब्रांड्स के प्रचार के पैम्फलेट्स, अखबार की खबरें, आलेख, संपादकीय, विज्ञप्तियां, साहित्य की किताबें, ज्ञान–विज्ञान की किताबें और न जाने क्या–क्या...। हम इन सबको पढ़ते हैं। यह अलग बात है कि इसमें से कितने टेक्स्ट को हम गहराई और बारीकी से पढ़ते हैं। संभावना तो यह भी है कि हम उस तरह से पढ़ते ही न हों, जिस तरह से उसे पढ़ने की आवश्यकता होती है।

लेखन का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है, लेकिन लेखन के प्रति हमारी जागरूकता उतनी नहीं है। पढ़े–लिखे लोगों में भी लेखन के प्रति उदासीनता दिखाई देती है। यही कारण है कि बहुत साधारण सी बातों को भी लिखने में असमर्थता अनुभव करते हैं। आज के युग में लिखने के कई नए आयाम विकसित हुए हैं, परंतु आम पढ़ा–लिखा व्यक्ति न केवल इनसे अनभिज्ञ है, अपितु इन क्षेत्रों में लेखन का कौशल भी उसने विकसित नहीं किया है। नई तकनीक से, खासकर मीडिया और इंटरनेट जैसे क्षेत्रों में लेखन के क्षेत्र में अनेक नई विधाएं विकसित हुई हैं। अभिव्यक्ति, संचार और संपर्क की दुनिया में एक क्रांति आ गई है, लेकिन अभी भी इनका समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है।

कार्यशाला के उद्घाटन सत्र में संदर्भ व्यक्ति प्रो. ए.एल. खन्ना ने कार्यशाला की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला। उन बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया, जो आज के संदर्भ में शिक्षकों के लिए जरूरी हैं। सत्र की अध्यक्षता करते हुए श्री रियाज तहसीन ने कहा कि पढ़ना और लिखना मनुष्य की अभिव्यक्ति से जुड़े हैं। इस कौशल को स्वयं मनुष्य ने विकसित किया है और यह कौशल शिक्षक के लिए अत्यंत आवश्यक है।

कार्यशाला के पहले दिन डॉ. खन्ना तथा फाल्गुनी चक्रवर्ती ने विभिन्न प्रकार की पाठ्य सामग्रियों (Text) के बारे में बताते हुए उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला और विशेष रूप से short notes, messages, sms , planner आदि के बारे में आवश्यक जानकारी, इनके निर्माण के तरीके और उपयोगिता पर बातचीत की। इसके बाद सभी प्रतिभागियों ने इन रूपों को लिखने का अभ्यास किया।

दूसरे दिन के प्रथम सत्र में अंग्रेजी सीखने की प्रक्रिया पर चर्चा करते हुए प्रो. खन्ना ने कहा कि अंग्रेजी को बोलकर व इसका प्रयोग करके ही सीखा जा सकता है। वर्तमान में विकसित अभिव्यक्ति के नए रूपों – ईमेल, सोशल नेटवर्किंग साइट्स–फेसबुक,ट्विटर व ब्लॉग – पर चर्चा हुई। इनके एकाउंट कैसे खोले जाते हैं और इन पर कैसे लिखा जाता है जैसे बिंदुओं पर जानकारी दी गई। एसएमएस, ईमेल, ब्लॉग, फेसबुक आदि कम समय में प्रभावी संप्रेषण के तरीके हैं। इन माध्यमों से पल भर में सारी दुनिया में संदेश भेजे जा सकते हैं।

इसके बाद सभी प्रतिभागियों ने इन विधाओं संबंधी उदाहरण तैयार किए। लगभग सभी प्रतिभागियों के लिए फेसबुक और ब्लॉग जैसे रूप एक दम नए थे। इस दृष्टि से यह सत्र काफी उपयोगी रहा।

तीसरा दिन पैराग्राफ तथा रिपोर्ट राइटिंग से संबंधित रहा। प्रारंभ में इन रूपों के लिखने की कला पर चर्चा हुई। तत्पश्चात प्रतिभागियों ने पैराग्राफ तथा रिपोर्ट लेखन का कार्य किया।

चौथे दिन का मुख्य विषय सारांश लेखन तथा संपादन कला था। आरंभ में इन दोनों विषयों पर गहन चर्चा हुई। फाल्गुनी जी ने बताया कि सारांश लेखन से पूर्व पैराग्राफ को अच्छी तरह से पढ़ना और समझना चाहिए। तत्पश्चात उसमें व्यक्त विचारों और मुख्य बिंदुओं को अपनी भाषा में लगभग एक तिहाई शब्दों में लिखना चाहिए। संपादन–अभ्यास के लिए समूह बनाए गए। एक समूह ने अंग्रेजी में

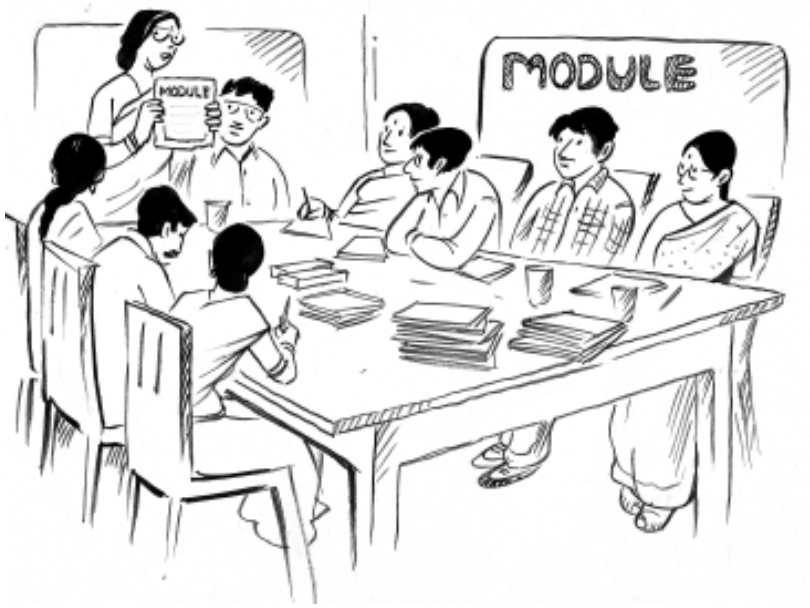

दी गई पाठ्य सामग्री का जबकि दूसरे समूह ने हिंदी में प्रदत्त पाठ्य सामग्री का संपादन एवं सारांश लेखन का अभ्यास किया ।

कार्यशाला का पांचवां दिन पुस्तक समीक्षा से संबंधित था। इसके लिए पहले ही प्रतिभागियों को सूचित कर दिया था कि दो रचनाओं की समीक्षा की जाएगी। एक, अपने पाठ्यक्रम की कोई भी पाठ्यपुस्तक होगी और दूसरी 'खोजें और जानें' पत्रिका होगी। प्रतिभागियों को पत्रिका की प्रतियां दो दिन पूर्व उपलब्ध करा दी गई थीं। पुस्तक समीक्षा विषयक आवश्यक चर्चा के पश्चात सभी प्रतिभागियों ने समीक्षा की।

कार्यशाला की एक और उपलब्धि यह रही कि प्रतिभागियों में अंग्रेजी भाषा में बोलने और लिखने के प्रति आत्मविश्वास और बढ़ा। कार्यशाला में अधिकांश चर्चाएं और लेखन अंग्रेजी में ही सम्पन्न हुए। यद्यपि आंशिक रूप से प्रतिभागियों को हिंदी में भी अपनी अभिव्यक्ति की छूट थी।

रपट : लक्ष्मीलाल वैरागी, सदस्य संपादन टीम ''खोजा''। विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर में कार्यरत।

अनूठा बाल मेला

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र द्वारा उदयपुर शहर की 12 कच्ची बस्तियों में ग्रीष्मकालीन शिविर आयोजित किए गए। बच्चों को कुछ अर्थपूर्ण देने के उद्देश्य से इन शिविरों में 45 दिन तक अलग–अलग प्रकार से भाषा, गणित और कला पर काम किया गया। बालकों में सृजनात्मक विकास के लिए आर्ट और क्राफ्ट विषय पर जोर दिया गया। बच्चों ने कागज से तरह–तरह के फूल, कोलाज बनाने व चित्रकारी करने का भरपूर आनंद उठाया। आर्ट और क्राफ्ट के अंतर्गत मुखौटे, पेंटिग, कार्ड, प्लेट से मछली, मिट्टी और पेपरमेशी की सामग्री, चार्ट, वेस्ट से बेस्ट, पपेट्स, पुस्तकें आदि बनाईं। बच्चों ने स्वरचित बाल गीत, कविता व शिविर के अनुभवों को भी लिखा। इन शिविरों के समापन के अवसर पर दिनांक 21 से 22 जून, 2013 को दो दिवसीय बाल मेले का आयोजन किया गया, जिसमें अलग–अलग बस्तियों से आए लगभग 550 बच्चे सम्मिलित हुए।

बाल मेले में विविध प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेलकूद प्रतियोगिताएं, नाटक मंचन, मनोरंजनात्मक गतिविधियां की गईं, साथ ही शिविरों में बनाई गई वस्तुओं की प्रदर्शनी लगाई गई। मेले का उद्घाटन बच्चों ने ही किया। खेलकूद प्रतियोगिता में प्रथम दिन छः विद्यालयों के बच्चों को कई तरह के खेल खिलाए गए, जिसमें प्रत्येक बच्चे को कम से कम दो खेलों में भाग लेना था।

चम्मच रेस के साथ खेलों का शुभारंभ किया गया। बच्चों ने कबड्डी, खो–खो, थ्री लेग रेस, मेंढक रेस आदि खेलों में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। कुछ बच्चों ने तो पहली बार खेल प्रतियोगिताओं में भाग लिया। उन्हें सबसे ज्यादा मजा थ्री लेग रेस में आया, क्योंकि इसमें कुछ तो तेज दौड़े, कुछ धीरे। जो धीरे दौड़ा, उसे तेज दौड़ने वाला खींचता रहा। कबड्डी खेल में सबसे ज्यादा रोमांचक टक्कर के मुकाबले हुए। अपने–अपने विद्यालय की टीम को प्रथम स्थान दिलाने के लिए बच्चे आतुर व उल्लसित थे। बच्चों ने खूब हूटिंग की तथा साथ आए अभिभावकों व अध्यापकों ने भी अपनी टीम का हौंसला बढ़ाया।

मनोरंजक गतिविधियों के 8 स्टॉल लगाए गए। इनमें गुब्बारों को सजाना, आकार देना, रिंग फेंककर सामान जीतना, एक मिनिट गेम (मोमबत्ती जलाना, गुब्बारे फुलाना, सुई पिरोना) प्रश्नोत्तर खेल (3 प्रश्नों में से किन्हीं 2 के सही उत्तर देना) गिलास पिरामिड को बॉल से तोड़ना, कार्ड को जमाकर चित्र बनाना आदि में सभी ने भाग लिया।

शिविर में बनाई गई विभिन्न वस्तुओं की प्रदर्शनी बाल मेले में लगाई गई थी। मेले में आए अभिभावकों व अध्यापकों ने बच्चों के कार्य को बहुत पसंद किया। बाल मेले में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम में सभी 12 विद्यालयों से दो–दो कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। चाहे वह नृत्य, गीत, नाटक, भजन या कविता हो। पारंपरिक वेश–भूषा के साथ बच्चों द्वारा स्वयं ढोलक व मंजीरे की ताल पर राजस्थानी गीत 'हल्दी घाटी रो असवार'.....व अन्य गीतों की प्रस्तुति ने सबका मन मोह लिया।

नाटक की रिहर्सल करते समय स्क्रिप्ट की फोटोकॉपी बच्चों को पढ़ने को दी गई। बच्चों को उनका रोल बताते हुए कहा गया, अब अपनी बोली में जैसे बोलते हो वैसे ही संवाद बोलो। बच्चों को जब अभिव्यक्ति की आजादी मिली तो वे खुलकर सामने आए । फिर न कहीं झिझक थी न ही था संकोच। खुली–सधी आवाज में नाटक का अभ्यास करने से उनमें आत्मविश्वास बढ़ा। 'हामिद का चिमटा' नाटक का प्रभावी मंचन हुआ। 'बदबूदार चिन्टू' नाटक ने अपने परिवार से प्रेम व एक अच्छे दोस्त की पहचान की समझ कराई। 'चावल की रोटी' नाटक में एक झूठ को छुपाने के लिए दस बार झूठ बोलना पड़ता है इसलिए सच बोलना ही ठीक होगा की प्रेरणा दी। 'पंच परमेश्वर' नाटक ने सही न्याय के लिए हिम्मत से काम करने की प्रेरणा दी। इसके अलावा हास्य में लिपटी कहानी ''लंबी दाढ़ी वाला'' व 'खिचड़ी' ने सभी को खूब हंसाया।

इस अनूठे बाल मेले से लौटते वक्त बच्चों के चेहरे पर खुशी व उत्साह दिखाई दे रहा था।

रपट : मोहन लाल जाट, विद्या भवन कला संस्थान, उदयपुर, राजस्थान में व्याख्याता हैं।

रंगकर्मी विलास जानवे की रंगमंच कार्यशाला

(देखें पृष्ठ-12 : अभिव्यक्ति का रंगमंच)

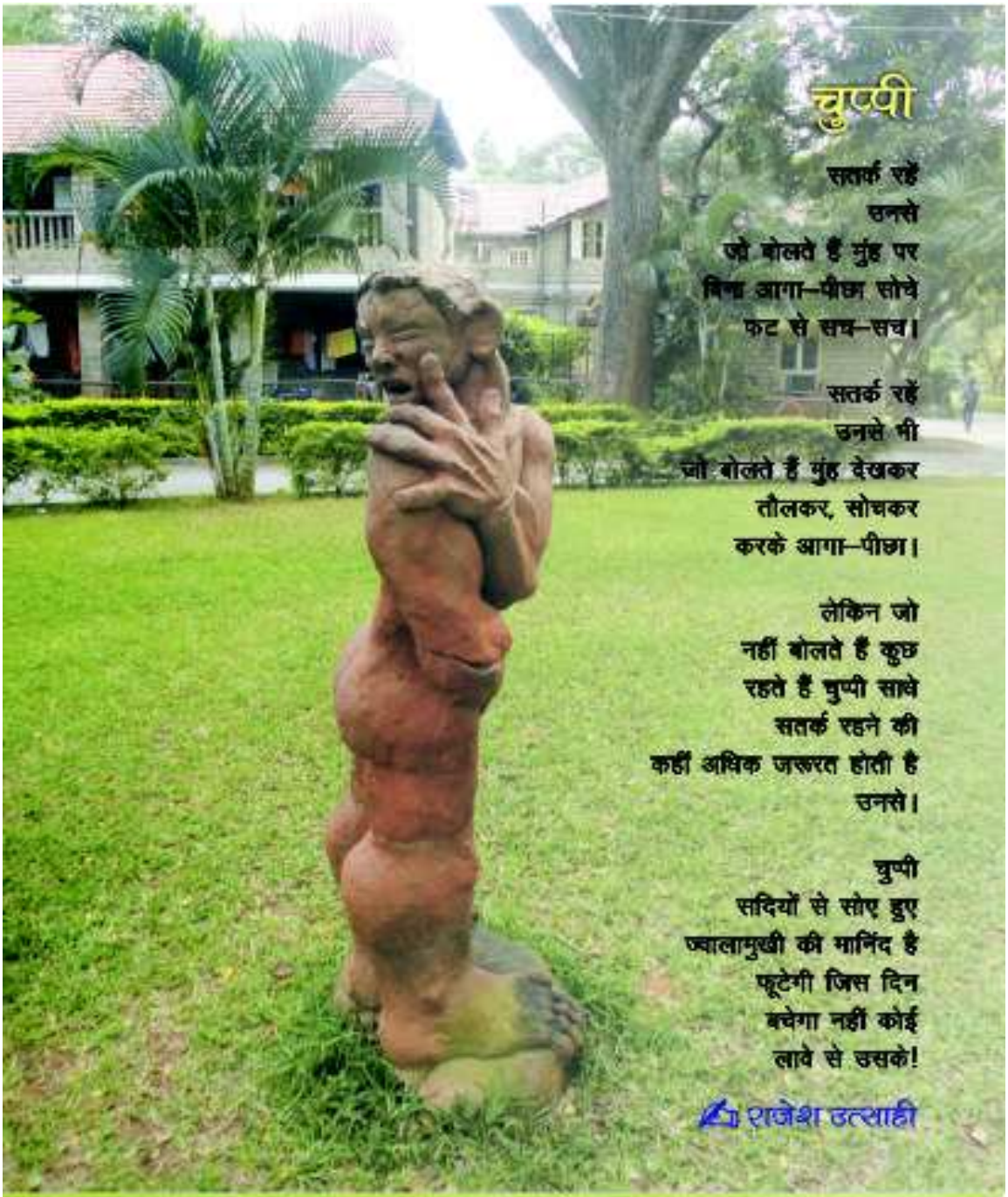

चुप्पी

सतर्क रहें
उनसे
जो बोलते हैं मुंह पर
बिना आगा–पीछा सोचे
फट से सच–सच।

सतर्क रहें
उनसे भी
जो बोलते हैं मुंह देखकर
तौलकर, सोचकर
करके आगा–पीछा।

लेकिन जो
नहीं बोलते हैं कुछ
रहते हैं चुप्पी साधे
सतर्क रहने की
कहीं अधिक जरूरत होती है
उनसे।

चुप्पी
सदियों से सोए हुए
ज्वालामुखी की मानिंद है
फूटेगी जिस दिन
बचेगा नहीं कोई
लावे से उसके!

राजेश उत्साही

विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर की ओर से प्रकाशक व मुद्रक : रियाज ए. तहसीन, पता : विद्या भवन सोसायटी, डॉ. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा, उदयपुर, राजस्थान से प्रकाशित एवं संजय प्रिन्टर्स, 71, महिला मंडल स्कूल के पास, मुखर्जी चौक, उदयपुर, (राज.) से मुद्रित, संपादक : कुमार अनुपम।